॥ श्रीहरिः ॥ 543

परमार्थसूत्र-संग्रह

जयदयाल गोयन्दका

543

॥ श्रीहरिः ॥

परमार्थसूत्र-संग्रह

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरि: ॥

निवेदन

'परमार्थ-सूत्र-संग्रह'—पुस्तकके नामसे ही स्पष्ट है कि इसमें जीवनको ऊँचा उठानेवाली महत्त्वपूर्ण पारमार्थिक बातें सूत्र (सार) रूपसे संकलित की गयी हैं। गम्भीर पारमार्थिक चिन्तन और सरल आध्यात्मिक विचारोंद्वारा जनकल्याणार्थ समर्पित ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कतिपय लेखों और महत्त्वपूर्ण प्रवचनोंका सार—सूक्तियोंके रूपमें इसमें सँजोया हुआ है।

पारमार्थिक सूक्तियोंको इस संग्रहमें शरणागति, श्रद्धा, प्रेम, दया, भक्ति, ज्ञानयोग, कर्मयोग, साधनकी बातें, चेतावनी आदि विभिन्न उपयोगी विषयोंपर इन्हीं शीर्षकोंसे कुल बारह अध्याय हैं। उनमें मुख्यत: इन्हीं विन्दुओंपर मात्र एक पंक्तिसे लेकर छोटे-बड़े अनेक अवतरणों (पैराग्राफ) के रूपमें विभिन्न दृष्टिकोणोंसे विचार किया गया है। इस प्रकार पुस्तककी विषय-वस्तु सबके लिये हितकारी और आत्मप्रेरक है। इसके पठन-पाठनसे नि:संदेह जीवन-सुधार और उत्तम व्यवहारकी शिक्षा, आध्यात्मिक उन्नतिसहित भजन-साधनविषयक पवित्र प्रेरणा मिलती है।

मर्मको छू लेनेवाली इसकी तथ्यपरक (आत्म-सुधारविषयक) बातें काममें लानेसे सर्वोपरि पारमार्थिक लाभ 'आत्मकल्याण' निश्चित है। अतएव जिज्ञासु सज्जनों, कल्याणकामी महानुभावों और माताओं-बहनोंसे इस पुस्तकसे अधिकाधिक लाभ उठानेकी हमारी विनम्र प्रार्थना है।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरि:॥

शरणागति

१-भगवान्‌की शरणागति एक बड़े ही महत्त्वका साधन है परन्तु उसमें अनन्यता होनी चाहिये।

२-गीताके आरम्भमें अर्जुन "**शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**" (२। ७) कहकर भगवान्‌की शरण ग्रहण करता है और अन्तमें भगवान् "**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**" (१८। ६६) कहकर शरणागतिका ही पूर्ण समर्थन करते हैं।

३-साधकको आवश्यकता है परमात्माके परायण होनेकी। श्रीपरमात्माकी शरण लेनेमात्रसे ही सब कुछ हो सकता है।

४-उस परमात्माके शरण होना साधकका कर्तव्य है, शरण होनेके बाद तो प्रभु स्वयं ही सारा भार सँभाल लेते हैं।

५-हमें प्रभुकी प्राप्तिके लिये घरसे तो कुछ भी नहीं देना पड़ता। भगवान्‌की ही चीजें उनको भेंट कर देनी है। इसमें हमारा क्या लगता है?

६-समस्त विघ्नोंसे छुटकारा पानेका मुख्य उपाय है—ईश्वरकी शरण।

७-भगवान्‌को यन्त्री मानकर अपनेको उनके समर्पण करके उनके हाथका यन्त्र बनकर उनके आज्ञानुसार चलना चाहिये।

८-जो समय पड़नेपर अपना सर्वस्व प्रभुके लिये निछावर करनेको तैयार रहते हैं वही श्रेष्ठ हैं।

९-शरणागतिमें प्रधानतः चार बातें साधकके लिये समझनेकी हैं—

१. सब कुछ परमात्माका समझकर उनके अर्पण करना।

२. उनके प्रत्येक विधानमें परम सन्तुष्ट रहना।

३. उनके आज्ञानुसार उन्हींके लिये समस्त कर्तव्य कर्म करना।

४. नित्य-निरन्तर स्वाभाविक ही उनका एकतार स्मरण रखना।

१०-शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा—सब उनके चारुचरणोंमें अर्पण कर दिन-रात उन्हींके चिन्तनमें लगे रहना चाहिये।

११-सब कुछ परमात्माके अर्पण कर देनेका अर्थ घर-द्वार छोड़कर संन्यासी हो जाना या कर्तव्य कर्मोंका त्यागकर कर्महीन हो बैठना नहीं है। सांसारिक वस्तुओंपर हमने भूलसे जो ममता आरोपित कर रखी है यानी उनमें जो अपनापन है, उसे उठा देना। यही उसकी वस्तु उसके अर्पण कर देना है।

१२-एक परमात्माके सिवा किसीका किसी भी कालमें कुछ भी सहारा न समझकर लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्तिको त्यागकर, शरीर और संसारमें अहंता-ममतासे रहित होकर, केवल एक परमात्माको ही अपना परम आश्रय, परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भावसे अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते रहना और भगवान्‌का भजन, स्मरण करते हुए ही उनके आज्ञानुसार समस्त कर्तव्य कर्मोंका निःस्वार्थभावसे केवल भगवान्‌के लिये ही आचरण करते रहना, यही "सब प्रकारसे परमात्माके अनन्यशरण" होना है।

१३-शरण, आश्रय, अनन्यभक्ति, अव्यभिचारिणी भक्ति, अवलम्बन, निर्भरता और आत्मसमर्पण आदि शब्द प्रायः एक ही अर्थके बोधक हैं।

१४-समस्त साधनोंमें परमात्माकी शरणागतिके समान सरल, सुगम, सुखसाध्य साधन अन्य कोई-सा भी नहीं प्रतीत होता। इसीलिये प्रायः सभी शास्त्रोंमें इसकी प्रशंसा की गयी है।

१५-यह समस्त जगत् उस परमात्माका है, वही यावन्मात्र पदार्थोंका उत्पन्न करनेवाला, वही नियन्त्रणकर्ता, वही आधार और वही स्वामी है, उसीने हमको हमारे कर्मवश जैसी योनि, जो स्थिति मिलनी चाहिये थी उसीमें उत्पन्नकर अपनी कुछ वस्तुओंकी सँभाल और सेवाका भार दे दिया है और हमारे लिये कर्तव्यकी विधि भी बतला दी है। परन्तु हमने भ्रमसे परमात्माके पदार्थोंको अपना मान लिया है, इसीलिये हमारी दुर्गति होती है। यदि हम अपनी इस भूलको मिटाकर यह समझ लें कि जो कुछ है सो परमात्माका है, हम तो उसके सेवकमात्र हैं, उसकी सेवा करना ही हमारा

धर्म है, तो वह परमात्मा हमें ईमानदार समझकर हमपर प्रसन्न होता है और हम उसकी कृपा और पुरस्कारके पात्र होते हैं।

१६-जाति या आचरणसे कोई कैसा भी नीच या पापी क्यों न हो, भगवान्‌की शरणमात्रसे ही वह अनायास परमगतिको प्राप्त हो जाता है।

१७-भगवान्‌ने शरणागतिको जितना महत्त्व दिया है उतना अन्य किसी भी साधनको नहीं दिया।

१८-श्रीहनुमान्‌जीकी तरह प्रेममें विह्वल होकर अति श्रद्धासे भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

१९-भक्तको भगवान्‌के लिये ही भगवान्‌के शरणागत होना चाहिये। फिर तत्त्वकी उपलब्धि होनेमें विलम्ब नहीं होगा।

२०-एक बार भी जो सच्चे हृदयसे भगवान्‌की शरण हो जाता है, भगवान् उसे अभय कर देते हैं, यह उनका व्रत है।

२१-पूर्ण अनन्यता होनेपर भगवान्‌की ओरसे तुरन्त ही इच्छित उत्तर मिलता है।

२२-केवल एक परमात्माकी शरण लेनेसे ही सारे काम सिद्ध हो सकते हैं। परन्तु शरण लेनेका काम साधकका है। शरण होनेके बाद तो प्रभु स्वयं उसका सारा भार सँभाल लेते हैं।

२३-यदि कोई किसीके परायण हो जाता है तो उसकी सारी सँभाल वही रखता है, जैसे बच्चा जबतक अपनी माताके परायण रहता है तबतक उसकी रक्षाका और सब प्रकारकी सँभालका भार माता स्वयं ही अपने ऊपर लिये रहती है।

२४-छोटा बालक अपराध करके अपनी माताकी गोदमें जा बैठता है और बड़ा चरणोंमें गिर पड़ता है। इसी प्रकार भक्त अपने परम सुहृद् परमात्माके पादपद्मोंमें गिर पड़े। फिर वे चाहे मारें या तारें इसकी कोई परवा नहीं, भगवान्‌के द्वारा किये हुए विधानमें सदा प्रसन्न रहे, भारी-से-भारी दुःख पड़नेपर भी कभी विचलित न हो।

२५-जिस समय बालकके फोड़ेकी चीर-फाड़ होती है उस समय वह अपनी माताकी गोदमें सुखसे बैठा रहता है, जरा भी घबड़ाता नहीं। वह रोता हुआ भी इस बातको जानता है कि मेरी स्नेहमयी जननी कभी स्वप्नमें भी मेरा अहित नहीं कर सकती। उसका प्रत्येक विधान मेरे लिये सदा मङ्गलमय ही होता है। इसी प्रकार भक्त निःशंक होकर विश्वासपूर्वक भगवान्‌के चरणोंमें पड़ा रहता है।

२६-हम तो प्रभुके बालक हैं। मा बालकके दोषोंपर ध्यान नहीं देती। उसके हृदयमें बालकके लिये अपार प्यार रहता है। प्रभु यदि हमारे दोषोंका खयाल करें तो हमारा कहीं पता ही न लगे।

२७-हमें वे चाहे जैसे रखें और चाहे जहाँ रखें उनकी स्मृति अटल बनी रहनी चाहिये। उनकी राजीमें ही अपनी राजी, उनके सुखमें ही अपना सुख मानना चाहिये। प्रभु यदि हमें नरकमें रखना चाहें तो हमें वैकुण्ठकी ओर ताकना भी नहीं चाहिये, बल्कि नरकमें वास करनेमें ही परम आनन्द मानना चाहिये।

२८-सब प्रकारसे प्रभुके शरण हो जानेपर फिर उनसे इच्छा या याचना करना नहीं बन सकता। जब प्रभु हमारे और हम प्रभुके हो गये तो फिर बाकी क्या रहा!

२९-यह सारा संसार उस नटवरका क्रीड़ास्थल है, प्रभु स्वयं इसमें बड़ी ही निपुणताके साथ नाट्य कर रहे हैं, उनके समान चतुर खिलाड़ी दूसरा कोई भी नहीं है, यह जो कुछ हो रहा है सब उन्हींका खेल है। उनके सिवा कोई भी ऐसा अद्भुत खेल नहीं कर सकता। इस प्रकार इस संसारकी सम्पूर्ण क्रियाओंको भगवान्‌की लीला समझकर वह शरणागत भक्त क्षण-क्षणमें प्रसन्न होता रहता है और पग-पगपर प्रभुकी दयाका दर्शन करता रहता है।

३०-शरणागत भक्त स्वयं तो उद्धाररूप हैं ही और जगत्‌का उद्धार करनेवाले हैं, ऐसे महापुरुषोंके दर्शन, स्पर्श, भाषण और चिन्तनसे ही मनुष्य पवित्र हो जाते हैं, वे जहाँ जाते हैं वहींका वातावरण शुद्ध हो जाता है, पृथ्वी पवित्र होकर तीर्थ बन जाती है, ऐसे ही पुरुषोंका संसारमें जन्म लेना सार्थक और धन्य है।

३१-अभिन्नदर्शी परमात्मपरायण तद्रूप भक्तोंमें कोई तो स्वामी शुकदेवजीकी तरह लोगोंके उद्धारके लिये उदासीनकी भाँति विचरते हैं, कोई अर्जुनकी भाँति भगवदाज्ञानुसार आचरण करते हुए कर्तव्य कर्मोंके पालनमें लगे रहते हैं, कोई प्रात:स्मरणीया भक्तिमती गोपियोंकी तरह अद्भुत प्रेमलीलामें मत्त रहते हैं और कोई जडभरतकी भाँति जड और उन्मत्तवत् चेष्टा करते रहते हैं।

३२-जैसे कोई प्रेमी सज्जन अपने किसी प्रेमी न्यायकारी सुहृद् सज्जनके द्वारा किये हुए न्यायको अपनी इच्छासे प्रतिकूल फैसला होनेपर भी उस सज्जनकी न्यायपरायणता, विवेकबुद्धि, विचारशीलता, सुहृदता, पक्षपातहीनता और प्रेमपर विश्वास रखकर हर्षके साथ स्वीकार कर लेता है, इसी प्रकार शरणागत भक्त भी भगवान्‌के कड़े-से-कड़े विधानको सहर्ष सादर स्वीकार करता है क्योंकि वह जानता है, मेरा सुहृद् अकारण करुणाशील भगवान् जो कुछ विधान करता है उसमें उसकी दया, प्रेम, न्याय और मेरी मङ्गलकामना भरी रहती है। वह भगवान्‌के किसी भी विधानपर कभी भूलकर भी मन मैला नहीं करता।

३३-बाजीगरकी कोई भी चेष्टा उसके झमूरेको अपने मनसे प्रतिकूल या दु:खदायक नहीं दीखती। वह अपने स्वामीकी इच्छाके अधीन होकर बड़े हर्षके साथ उसकी प्रत्येक क्रियाको स्वीकार करता है। इसी प्रकार भक्त भी भगवान्‌की प्रत्येक लीलामें प्रसन्न रहता है, वह जानता है कि यह सब मेरे नाथकी माया है। वे अद्भुत खिलाड़ी नाना प्रकारके खेल करते हैं। मुझपर तो उनकी अपार दया है जो उन्होंने अपनी लीलामें मुझे साथ रखा है—यह मेरा बड़ा सौभाग्य है जो मैं उस लीलामयकी लीलाओंका साधन बन सका हूँ, यों समझकर वह उसकी प्रत्येक लीलामें, उसके प्रत्येक खेलमें उसकी चातुरी और उसके पीछे उसका दिव्य दर्शन कर पद-पदपर प्रसन्न होता है।

३४-आनन्दमें मग्न हुआ वह भगवान्‌का शरणागत भक्त लीलामय भगवान्‌की आनन्दमयी लीलाका ही अनुकरण करता है अतएव उसके कर्म

भी लीलामात्र ही हैं।

३५-परमात्माके शरणका तत्त्व जानकर भक्त भगवान्‌की तद्रूपताको प्राप्त हो जाते हैं।

३६-सम्पूर्ण कर्म परमात्माके अर्पण करके प्रतिपल उसे स्मरण रखना और क्षणभरकी विस्मृतिसे मणिहीन सर्प या जलसे निकाली हुई मछलीकी भाँति परम व्याकुल होकर तड़पने लगना शरणागत भक्तका स्वभाव बन जाता है।

३७-शरणागत साधकको यदि कोई भय रहता है तो वह इसी बातका रहता है कि कहीं उसके चित्तसे प्रियतम परमात्माकी विस्मृति न हो जाय। वास्तवमें वह कभी परमात्माको भूल भी नहीं सकता।

३८-शरणागत भक्तकी बात ही क्या है, भय और पाप तो उसके भी नहीं रहते जो ईश्वरका यथार्थरूपसे अस्तित्व (होनापन) ही मान लेता है।

३९-सतीशिरोमणि पतिव्रता स्त्री अपने परमप्रिय पतिकी भृकुटीकी ओर ताकती हुई सदा-सर्वदा पतिके अनुकूल ही उसकी छायाके समान चलती है, उसी प्रकार ईश्वरप्रेमी शरणागत भक्त भगवदिच्छाका अनुसरण करता है। सब कुछ उसीका समझकर उसके लिये कार्य करता है।

४०-शरणागत भक्त इस तत्त्वको जानता है कि दैवयोगसे जो कुछ आकर प्राप्त होता है वह ईश्वरके न्यायसंगत विधान और उसकी दयापूर्ण आज्ञासे होता है। इससे वह उसे परम सुहृद् प्रभुद्वारा भेजा हुआ इनाम समझकर आनन्दसे मस्तक झुकाकर ग्रहण करता है।

४१-शरणागत भक्त जो कुछ होता है उसीमें सन्तुष्ट रहता है। प्रारब्धवश अनिच्छा या परेच्छासे जो कुछ भी लाभ-हानि, सुख-दुःखकी प्राप्ति होती है वह उसको परमात्माका दयापूर्ण विधान समझकर सदा समानभावसे सन्तुष्ट, निर्विकार और शान्त रहता है।

४२-शरणागतिके रहस्यको समझनेवाले भक्तोंके लिये उद्धारकी चिन्ता करना तो दूर रहा, वह इस प्रसंगकी स्मृतिको भी पसंद नहीं करता। यदि भगवान् स्वयं कभी उसे उद्धारकी बात कहते हैं तो वह अपनी शरणागतिमें

त्रुटि समझकर लज्जित और संकुचित होकर अपनेको धिक्कारता है। वह समझता है कि यदि मेरे मनमें कहीं मुक्तिकी इच्छा छिपी हुई न होती तो आज इस अप्रिय प्रसंगके लिये अवसर ही क्यों आता?

४३-शरणागतिका साधक प्रत्येक सुख-दुःखको उसका दयापूर्ण विधान मानकर प्रसन्न होता है।

४४-भगवान्‌का प्रिय प्रेमी शरणागत भक्त महान् दुःखरूप फलको बड़े आनन्दके साथ भोगता हुआ पद-पदपर उसकी दयाका स्मरण करता हुआ परम प्रसन्न होता रहता है।

४५-शरणागत भक्तको उद्धार होने-न-होनेसे मतलब ही क्या है? वह तो अपने-आपको मन-बुद्धिसहित उसके चरणोंमें समर्पित कर सर्वथा निश्चिन्त हो जाता है, उसे उद्धारकी परवा ही क्यों होने लगी?

४६-शरण होनेपर हमारे मनमें अपने उद्धारकी चिन्ता होती है और हम अपनेको शरणागत भी समझते हैं तो यह हमारी नीचता है, हम शरणागतिका रहस्य ही नहीं समझते।

४७-शरण ग्रहण करनेपर भी यदि शरणागतको चिन्ता करनी पड़े तो वह शरण ही कैसी? जो जिसकी शरण होता है उसकी चिन्ता उसके स्वामीको ही रहती है।

४८-अपने उद्धारकी चिन्ता तो शरणागतिके साधकके चित्तसे भी चली जाती है।

४९-जो चिन्ता करता है, अपनेको बँधा हुआ मानता है, बन्धनसे मुक्ति चाहता है वह वास्तवमें परमात्माके तत्त्वको जानकर उनके शरण नहीं हुआ।

५०-अर्पणकी सिद्धि हो जानेपर साधक बन्धनमुक्त हो जाता है, उसे किसी प्रकारकी कोई चिन्ता नहीं रहती।

५१-मायाके बन्धनसे छूटना ही सबसे बड़ा पुरस्कार है। जो कुछ है सो परमात्माका है, इस बुद्धिके आ जानेपर ममता चली जाती है और जो कुछ है सो परमात्मा ही है, इस बुद्धिसे अहंकारका नाश हो जाता है—यानी

एक परमात्माको ही जगत्का उपादान और निमित्त-कारण समझ लेनेसे उसमें ममता और अहंकार (मैं और मेरा) नष्ट हो जाता है।

५२-"मैं-मेरा" ही बन्धन है, भगवान्का शरणागत भक्त "मैं-मेरा" के बन्धनसे मुक्त होकर परमात्मासे कहता है कि बस केवल एक तू ही है और सब तेरा ही है।

५३-जो अपने-आपको भगवान्के हाथमें सौंप देता है उसके द्वारा शास्त्रनिषिद्ध कर्म तो हो ही नहीं सकते। यदि शास्त्रविरुद्ध किञ्चिन्मात्र भी कर्म होता है तो समझना चाहिये कि हमारी बागडोर भगवान्के हाथमें नहीं है, कामके हाथमें है।

५४-यदि सद्गुणोंकी वृद्धि होती न दीखे तो समझना चाहिये कि शरणमें अभी त्रुटि है। जैसे सूर्यकी शरण ले लेनेपर अन्धकारको कहीं भी स्थान नहीं रह जाता, वैसे ही भगवान्के शरण हो जानेपर हृदयमें किसी प्रकारका दोष रह ही नहीं सकता।

५५-जो शरणागत भक्त अपने जीवनको परमात्माके हाथोंमें सौंपकर उसके इशारेपर नाचना चाहता है उसके द्वारा पाप कैसे बन सकते हैं।

५६-भगवान्का जो शरणागत अनन्यभक्त सब तरफ, सबमें, सर्वदा भगवान्को देखता है, वह छिपकर भी पाप कैसे कर सकता है!

५७-शरणागतिके मार्गपर चलनेवाले साधकके हृदयमें दुर्गुण और दुराचार स्वतः ही नष्ट होते जाते हैं तथा सदाचार और सद्गुणका विकास भी भगवान्की दयासे अपने-आप ही होता जाता है।

५८-भक्त विचार करता है कि मुझमें जो "मैं" था, वह "मैं" तो प्रभुके शरण हो गया। अब तो मैं प्रभुकी कठपुतलीमात्र हूँ।

५९-कठपुतलीको सूत्रधार जैसे नचाता है वह वैसे ही नाचती है। अपनी ओरसे कोई चेष्टा नहीं करती। वैसे ही वह भक्त अपने अहंकारसे कुछ भी नहीं करता। उसके द्वारा जो कुछ होता है, सब भगवान् ही करते हैं, इसीलिये उसकी प्रत्येक क्रिया परम पवित्र और आदर्श होती है। उससे ऐसा कोई कार्य होता ही नहीं जो भगवान्की आज्ञा और रुचिके प्रतिकूल हो।

६०-स्वामीके पूर्णतया शरण होनेपर तो स्वामीके इशारेमात्रसे ही उनके हृदयका भाव समझमें आने लगता है। फिर तो वह प्रेमपूर्वक आनन्दके साथ उसीके अनुसार काम करने लगता है।

६१-दैवयोगसे अपने मनके अत्यन्त विपरीत भारी संकट आ पड़नेपर भी भक्त उस संकटको और दयामय स्वामीके दयापूर्ण विधानको पुरस्कार समझकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता है।

६२-जो पुरुष सब प्रकारसे अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण कर देता है, उसकी सारी क्रियाएँ पतिव्रता स्त्रीकी भाँति स्वामीके अनुकूल होने लगती हैं।

६३-जैसे शेषनागजी अपने शरीरकी शय्या बनाकर निरन्तर उसे भगवान्‌की सेवामें लगाये रखते हैं, जैसे राजा शिबिने अपना शरीर कबूतरकी रक्षाके लिये लगा दिया, जैसे मयूरध्वज राजाके पुत्रने अपने शरीरको प्रभुके कार्यमें अर्पण कर दिया, वैसे ही प्रभुकी इच्छा, आज्ञा-प्रेरणा और संकेतके अनुसार लोक-सेवाके रूपमें या अन्य किसी रूपमें शरीरको प्रभुके कार्यमें लगा देना ही शरीरका प्रभुके अर्पण करना है।

६४-सब प्रकारसे भगवान्‌के शरण होनेके लिये बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ और शरीर—इन सबको सम्पूर्णरूपसे भगवान्‌के अर्पण कर देनेकी आवश्यकता है।

बुद्धिका अर्पण

६५-भगवान् "हैं" इस बातका बुद्धिमें प्रत्यक्षकी भाँति नित्य-निरन्तर निश्चय रहना, संशय, भ्रम और अभिमानसे सम्पूर्णतया रहित होकर भगवान्‌में परम श्रद्धा करना, बड़ी-से-बड़ी विपत्ति पड़नेपर भी भगवान्‌की आज्ञासे तनिक भी न हटना यानी प्रतिकूल भाव न होना तथा पवित्र हुई बुद्धिके द्वारा गुण और प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूप और तत्त्वको जानकर उस तत्त्व और स्वरूपमें बुद्धिका अविचलभावसे नित्य-निरन्तर स्थित रहना। यह बुद्धिका भगवान्‌में अर्पण करना है।

मनका अर्पण

६६-प्रभुकी अनुकूलतामें अनुकूलता, उनके इच्छानुसार ही इच्छा और उनकी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न होना, प्रभुके मिलनेकी मनमें उत्कट इच्छा होना, केवल प्रभुके नाम, रूप, गुण, प्रभाव, रहस्य और लीला आदिका ही मनसे नित्य-निरन्तर चिन्तन करना, मन प्रभुमें रहे और प्रभु मनमें वास करें, मन प्रभुमें रमे और प्रभु मनमें रमण करें। यह रमण अत्यन्त प्रेमपूर्ण हो और वह प्रेम भी ऐसा हो कि जिसमें एक क्षणका भी प्रभुका विस्मरण जलके वियोगमें मछलीकी व्याकुलतासे भी बढ़कर मनमें व्याकुलता उत्पन्न कर दे। यह भगवान्‌में मनका अर्पण करना है।

इन्द्रियोंका अर्पण

६७-कठपुतली जैसे सूत्रधारके इशारेपर नाचती है, उसकी सारी क्रिया स्वाभाविक ही सूत्रधारकी इच्छाके अनुकूल ही होती है, इसी प्रकार अपनी सारी इन्द्रियोंको भगवान्‌के हाथोंमें सौंपकर उनकी इच्छा, आज्ञा, प्रेरणा और संकेतके अनुसार कार्य होना और इन्द्रियोंद्वारा जो कुछ भी क्रिया हो उसे मानो प्रभु ही करवा रहे हों ऐसे समझते रहना—यही अपनी इन्द्रियोंको प्रभुके अर्पण करना है।

शरीरका अर्पण

६८-प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करना, यह शरीर प्रभुकी सेवा और उनके कार्यके लिये ही है, ऐसा समझकर प्रभुकी सेवामें और उनके कार्यमें शरीरको लगा देना। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना सब कुछ प्रभुके कार्यके लिये होना यह शरीरका अर्पण है।

६९-अपनी बागडोर भगवान्‌के हाथमें सौंप देनी चाहिये, जिस प्रकार भगवान् करवावें वैसे ही कठपुतलीकी भाँति कर्म करे।

७०-भगवान्‌के शरणार्थीको ऐसा मानना चाहिये कि भगवान् जो कुछ करते हैं, सब मङ्गल ही करते हैं। उनके प्रत्येक विधानमें दया और न्याय मानकर आनन्दित होना चाहिये।

७१-जैसे बच्चा अपनेको और अपनी सारी क्रियाओंको माताके प्रति सौंपकर मातृपरायण होता है, इसी प्रकार हमें भी अपने-आपको और अपनी सारी क्रियाओंको परमात्माके हाथोंमें सौंपकर उनके चरणोंमें पड़ जाना चाहिये।

७२-जो पुरुष बच्चेकी भाँति भगवान्‌पर भरोसा करता है, भगवान् उसकी उन्नति और रक्षाकी व्यवस्था स्वयं करते हैं, उसे तो केवल निमित्त बनाते हैं।

७३-वे सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, परमदयालु, सर्वज्ञ प्रभु अपने आश्रितको कभी गिरने देते ही नहीं।

७४-बच्चेकी तरह परम श्रद्धा और विश्वासके साथ जो अपने-आपको परमात्माकी गोदमें सौंप देता है, वही पुरुष परमात्माकी कृपाका इच्छुक और पात्र समझा जाता है और इसके फलस्वरूप वह परमात्माकी दयासे परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

७५-जो लोग अपने पुरुषार्थसे भगवान्‌को पानेमें अपनेको सर्वथा असमर्थ अनुभव करते हैं, जो निरन्तर केवल उन्हींकी कृपाकी बाट जोहते रहते हैं तथा मातृपरायण शिशुकी भाँति उन्हींपर सर्वथा निर्भर हो जाते हैं, उनसे मिलनेके लिये भगवान् स्वयं आतुर हो उठते हैं और उसी प्रकार दौड़ पड़ते हैं जैसे नयी ब्यायी हुई गौ अपने बछड़ेसे मिलनेके लिये दौड़ पड़ती है।

७६-भगवान्‌के आश्रयसे स्वतः ही सद्गुण और सदाचारकी वृद्धि होने लगती है।

७७-सारे गुणोंकी प्राप्ति भगवच्छरणागतिसे हो जाय इसमें तो कहना ही क्या, ये सब तो भगवान्‌के प्रेमियोंके सहवाससे ही प्राप्त हो सकते हैं।

७८-शरणागतिकी दृढ़ताके लिये साधकको सदा आत्मनिरीक्षण करते रहना चाहिये। वह अपने मनको सदा देखता रहे कि उसमें सद्गुणोंका और भगवान्‌का वास हो रहा है या विषयोंका। वह ध्यान रखे कि उसकी वाणी

भगवद्गुणानुवादका रसानुभव कर रही है या नहीं। उसकी क्रियाएँ भगवान्के बदले कहीं भोगोंके लिये तो नहीं हो रही हैं?

७९-जो अपने-आपको भगवान्के अर्पण कर देता है, उसके सारे आचरण भगवत्कृपासे भगवान्के अनुकूल ही होते हैं—यही शरणागतिकी कसौटी है।

८०-जो कुछ संसार प्रतीत होता है वह भी भगवान्की लीला है। भगवान् ही लीला कर रहे हैं। उनकी रुचिके अनुसार ही लीलावत् काम करना चाहिये।

८१-मालिककी इच्छासे ही सब काम होते हैं। अत: मालिक जैसा करें, उसीमें प्रसन्न रहना चाहिये। उसके विपरीत इच्छा ही नहीं करनी चाहिये।

८२-अपने मनके अनुसार करना ही शरणागतिमें दोष लगाना है। इसलिये अपनी इच्छाको सर्वथा छोड़कर जिससे स्वामी प्रसन्न हों वही काम स्वामीके लिये लीलामात्र मानकर करना चाहिये।

८३-आपलोग अपने साधनके समयका थोड़ा सुधार कर लें तो कल्याण हो सकता है। ईश्वरकी शरण लेनेसे काम बना पड़ा है, विचारनेकी बात है। हमलोगोंका समय प्राय: व्यर्थ व्यतीत होता है।

८४-महात्माकी शरण लेनेके बाद तो भजन-ध्यान होनेमें कुछ भी कठिनता नहीं रहती और स्वभाव भी स्वत: ही सुधर जाता है। चित्तमें चिन्ता या किसी प्रकारकी इच्छा हो जानेसे तो शरणागतिमें दोष आता है।

८५-भगवान्का सब समय चिन्तन करनेसे ही शरण हुआ जाता है।

८६-संसार सभी मिथ्या है, यों जानकर निरन्तर नारायणके चिन्तनकी शरण लेनी चाहिये।

८७-संसार मिथ्या है। भगवान्की लीला है। उसे सच्चा समझनेसे आसक्ति होकर इच्छा उत्पन्न होनेसे मनुष्यमें बहुत-से दोष आ जाते हैं। इसलिये भगवान्की शरण लेनी ही उत्तम है।

८८-नारायणकी शरण होनी चाहिये, जो कुछ होता है सो उसीकी आज्ञासे होता है।

८९-मालिक अपने-आप चाहे सो करें, मैं निश्चिन्त हूँ। ऐसी भावना होनी चाहिये।

९०-जो सब समय भगवान् नारायणके चिन्तनकी शरण रखेगा, एक पल भी उसे नहीं छोड़ेगा और भगवान्‌के नाम-रूपका चिन्तन करते हुए ही मरेगा वह तो भगवान्‌को ही प्राप्त होगा। वह मृत्युरूपी संसार-सागरमें कभी न डूबेगा। उसको मृत्यु कभी नहीं मार सकेगी।

९१-भगवान्‌का काम करे और उसका भार उनपर ही छोड़ देवे।

९२-सब कुछ मालिकका है, ऐसा समझना चाहिये। स्वामी अपनी वस्तुको चाहे जिस प्रकार बरते, सब उसीका है।

९३-भगवान्‌के शरणागत होनेसे उनकी कृपासे आप ही ऊँचे-से-ऊँचे साधन करनेकी शक्ति आ जाती है। इस बातपर विश्वास होना चाहिये।

९४-जीव जहाँतक चेत नहीं करता, वहींतक मायाकी प्रबल शक्ति मानकर वह उससे दबा रहता है। यदि चेतकर परमात्माकी शरण ले ले और उसका स्वरूप जान ले तो फिर मायाकी शक्ति कुछ भी न रहे।

९५-भगवदर्पण-बुद्धिमें मोहयुक्त कर्तापनका अभिमान नहीं रहता, अभिमानशून्य निर्दोष कर्तापनमात्र रहता है, वह भी साधन करते-करते अन्तमें समाप्त हो जाता है।

९६-जिस प्रकार नौकर सब काम करता हुआ भी लाभ-नुकसान सब मालिकका समझता है, वेतनके सिवा अपना कुछ भी नहीं समझता, इसी प्रकार सब कुछ भगवान्‌का समझना चाहिये और जो कुछ मोटा खाना, मोटा पहनना मिले, उसीको भगवान्‌का प्रसादरूप वेतन समझना चाहिये।

९७-अपना यह शरीर भी प्रभुके प्रसादसे ही बना है, अतएव यह भी मालिकका ही है। इस प्रकार समझनेवाला नौकर मालिकको बहुत ही प्रिय होता है। ऐसा विचारकर उस प्रभुका सच्चा सेवक बनना चाहिये।

९८-माया तो अति दुस्तर ही है, परन्तु भगवान्‌की शरण लेनेके बाद

दुस्तर नहीं रह जाती।

९९-भगवत्प्राप्ति तो भगवान्‌के भजन, ध्यानके तीव्र अभ्यास करनेसे ही हो सकती है, और वह नारायणके आश्रयपर पुरुषार्थ करनेसे सभी जगह हो सकती है।

१००-शरणका साधारण स्वरूप यह है—

१. श्रीभगवान्‌के अनुकूल होना और उनकी इच्छाके अनुसार चलना।
२. श्रीभगवान्‌के नाम, रूप और गुणोंको हर समय याद रखना।
३. जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त हो उसमें आनन्द मानना। उसमें भगवान्‌की दया समझना और उनका किया हुआ विधान समझकर प्रसन्न रहना। मन मलिन न करना।
४. अपने कल्याणके लिये भगवान्‌पर ही निर्भर रहना। कुछ भी चिन्ता नहीं करना। भगवान्‌पर पूरा विश्वास रखना और अपनेको उनके चरणोंकी शरणमें समझना।

१०१-निर्भयता, धीरता, गम्भीरता, सन्तोष, शान्ति और प्रसन्नता आदि गुण शरणापन्न पुरुषमें स्वाभाविक आ जाते हैं।

१०२-अपना सर्वस्व भगवान्‌को अर्पण करनेसे भगवान्‌के सर्वस्वका मालिक वह हो जाता है।

श्रद्धा

१-जिसका अन्तःकरण जितना स्वच्छ यानी मल-दोषसे रहित होता है, उतनी ही उसमें श्रद्धा होती है।

२-श्रद्धा ही कल्याणमें परम कारण है, इसलिये आत्माका कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको श्रद्धाकी वृद्धिके लिये विशेष कोशिश करनी चाहिये।

३-श्रद्धाके अनुसार उत्साह और उत्साहके अनुसार ही साधनमें तत्परता होती है और उस तत्परतासे मन और इन्द्रियोंके संयमकी भी सामर्थ्य हो जाती है।

४-भगवान्‌के तथा महापुरुषोंके प्रभाव और गुणोंको सुनकर भी श्रद्धा नहीं होती—इसमें कारण है अन्तःकरणकी मलिनता और तदनुकूल चेष्टा न होनेमें कारण है श्रद्धाका अभाव।

५-अन्तःकरणकी मलिनता दूर करनेका उपाय इस समय सबसे बढ़कर भगवान्‌के नामका जप है। इसलिये कैसे भी हो—हठसे या प्रेमसे—नाम-जप करता रहे। नाम-जपसे अन्तःकरणकी मलिनता नष्ट हो जायगी, उसमें सात्त्विक श्रद्धा उत्पन्न होगी और फिर भगवान् तथा महात्माओंमें आप ही श्रद्धा हो जायगी और उनके कथनानुसार तत्परतासे चेष्टा होने लगेगी।

६-अन्तःकरणकी स्वच्छतासे श्रद्धा होती है। श्रद्धासे साधनमें तत्परता होती है, तत्परतासे मन और इन्द्रियोंका निरोध होकर परमात्माके स्वरूपमें निरन्तर ध्यान होता है, उस ध्यानसे परमात्माके तत्त्वका यथार्थ ज्ञान होता है, और ज्ञानसे परम शान्तिकी प्राप्ति होती है। इसीको भगवत्प्राप्ति, परमधामकी प्राप्ति आदि नामोंसे गीतामें बतलाया गया है।

७-जिसका ऐसा विश्वास होता है कि मैं भगवान्‌की शरण हूँ—मेरी धारणाको दृढ़ और अन्तःकरणकी शुद्धि भगवान् ही करते हैं, उसकी हो जाती है।

८-भगवान्‌में श्रद्धा और प्रेम हो जानेपर वे न मिलें ऐसा कभी हो नहीं सकता। बाध्य होकर भगवान् अपने श्रद्धालु भक्तकी श्रद्धाको फलीभूत करते ही हैं। जबतक उनकी कृपापर पूरा विश्वास नहीं होता तबतक प्रभुका प्रसाद हमें कैसे प्राप्त हो सकता है।

९-भगवान्‌के दर्शनमें जो विलम्ब हो रहा है उसका एकमात्र कारण दृढ़ विश्वासका अभाव ही है। चाहे जिस प्रकार निश्चय हो जाय, निश्चय हो जानेपर भगवान् न आवें ऐसा हो नहीं सकता।

१०-वास्तविक श्रद्धा इतनी बलवती होती है कि भगवान्‌को बाध्य होकर उस श्रद्धाको फलीभूत करनेके लिये प्रकट होना पड़ता है। पारस यदि पारस है और लोहा यदि लोहा है तो स्पर्श होनेपर सोना होगा ही।

११-श्रद्धावान्‌को भगवान्‌की प्राप्ति होती है। श्रद्धालु भक्तकी कमीकी

पूर्ति करके भगवान् उसके कार्यको सिद्ध कर देते हैं। श्रद्धा होनेपर सारी कमीकी पूर्ति भगवान्‌की कृपासे अपने-आप हो जाती है।

१२-भगवन्निष्ठा भगवान्‌को बलात् अपना ऋणी बना लेती है।

१३-जो उनकी छोटी-सी-छोटी आज्ञाका पालन करनेके लिये अपने सर्वस्वको निछावर करनेको तैयार रहते हैं, भगवान् उनके ऋणी हो जाते हैं।

१४-ईश्वरकी प्राप्तिमें खूब विश्वास रखे। ऐसा विचार करे कि मेरे और कोई आधार नहीं है, केवल भगवान्‌की दयालुता देखकर मुझे पूरा भरोसा है कि वे अवश्य मेरी भी सुधि लेंगे।

१५-कल्याणमें श्रद्धा ही प्रधान है।

१६-उस परम प्यारेकी मन-मोहिनी मूर्तिका साक्षात् दर्शन करनेवाले एवं उसके तत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले पुरुषोंद्वारा ईश्वरके गुण, प्रेम और प्रभावकी बातोंको प्रेमसे सुनने एवं समझनेसे ईश्वरमें तर्करहित विशुद्ध श्रद्धा उत्पन्न हो सकती है—

(१) राजा द्रुपदकी महादेवजीके वचनोंमें उत्तम श्रद्धा थी। महादेवजीके वचनसे राजा द्रुपदने अपनी कन्याको पुत्र मानकर उसका विवाह भी कर दिया। (२) जबालाके पुत्र सत्यकामकी गुरुके वचनोंमें (३) शुकदेवजीकी राजा जनकके वचनोंमें (४) द्रोणाचार्यकी महाराज युधिष्ठिरके वचनोंमें उत्तम श्रद्धा थी।

प्रेम

१-सभी कुछ भगवान्‌का संकल्प है, वे भगवान् चाहे सो करें। उससे विकार होनेका कोई कारण नहीं। भगवान्‌के विधानमें अपना किसी प्रकार "हक उज्र" नहीं रहनेसे वैराग्य और सत्संगमें प्रेमकी अधिकता देखी जाती है।

२-प्रेम होनेके बाद तो प्रेमीकी कोई जरा-सी बात सुनते ही रोमाञ्च, अश्रुपातादि प्रेमानन्दके चिह्न प्रत्यक्ष होने लगते हैं।

३-प्रेमास्पदके पाससे आया हुआ साधारण मनुष्य भी बड़ा प्रिय लगता है। एक साधारण मनुष्यके साथ प्रेम होनेपर भी जब उसके गुणानुवाद और प्रेमकी बात सुननेसे आनन्द होता है तब प्रेमिकशिरोमणि भगवान्‌की तो बात ही क्या है? उद्धवकी बात सुनकर गोपिकाओंको जैसा प्रेम हुआ था वैसा ही प्रेम आज भी हो सकता है।

४-प्रेममें जितनी त्रुटि है उतना ही विलम्ब है।

५-देर इसलिये होती है कि साधक देरको सह रहा है। यदि साधकको प्रभुका वियोग इतना असह्य हो जाय कि उसके प्राण निकलने लगें तो फिर मिलनेमें तनिक भी विलम्ब नहीं होता।

६-जबतक साधक परमात्माका न मिलना बरदाश्त कर रहा है, जबतक भगवान्‌के बिना उसका काम चल रहा है, तबतक भगवान् भी देखते हैं कि इसका काम तो मेरे बिना चल ही रहा है, फिर मुझे ही क्या शीघ्रता है। जिस दिन भगवान्‌के बिना साधक नहीं रह सकेगा, उस दिन भगवान् भी भक्तके बिना नहीं रह सकेंगे।

७-विलम्ब भगवान्‌को चाहनेमें है, पानेमें नहीं।

८-सगुणमें प्रेम होनेपर उनके दर्शन हो जानेसे निर्गुणका भाव तुरन्त ही जाना जा सकता है।

९-श्रीपरमेश्वरके समान संसारमें प्रेम करने लायक दूसरा कोई भी नहीं है। कोई भी श्रीपरमेश्वरसे प्रेम करनेकी इच्छा करे, वे सबके साथ प्रेम करनेको तैयार रहते हैं।

१०-भगवान्‌से प्रेम करनेकी इच्छा हो तो भगवान्‌को ही सबसे उत्तम समझना चाहिये। संसारमें श्रीनारायणके समान दयालु तथा सुहृद् और कोई भी नहीं है। न उसके समान कोई प्रेमी ही है। वह नीचसे भी प्रेम करता है, किसीसे भी घृणा नहीं करता। यदि कोई मनुष्य अपनी नीचताकी ओर देखकर भगवान्‌को न भजे तब तो कोई उपाय नहीं, परन्तु भगवान्‌की ओरसे तो सबके लिये "खुला आर्डर" है। चाहे कोई कितना भी नीच क्यों न हो यदि निरन्तर भजन करे तो उसे भी भजनके प्रतापसे परमानन्दकी प्राप्ति हो

जाती है। भगवान्‌के ऐसे प्रभावको कोई न जाने तो इसमें भगवान्‌का कोई दोष नहीं।

११-भगवत्प्रेमकी इतनी प्रबलता होनी चाहिये कि जिससे भगवान्‌के मिले बिना रहा न जाय! ऐसी तीव्र उत्कण्ठा होनेपर ही भगवान् मिलते हैं।

१२-भगवान्‌का प्रेमी भगवान्‌के सर्वस्वका मालिक होता है।

१३-प्रेमास्पदमें प्रेम चाहिये, प्रेम ही प्रधान है। प्रेम न हो तो मिलनेका विशेष मूल्य नहीं।

१४-भगवान्‌में ऐसा प्रेम हो जाना चाहिये कि जिससे उनके मिले बिना चित्तमें चैन ही न पड़े।

१५-भगवान्‌में अधिक प्रेम होनेका उपाय भगवान्‌का चिन्तन ही है।

१६-सब जीवोंके साथ जो निष्काम प्रेम है वह प्रेम भगवान्‌के साथ ही है, क्योंकि भगवान् ही सर्वजीवोंकी आत्मा हैं।

१७-अपना उद्धार चाहे न हो, केवल प्रेमसहित भगवान्‌का चिन्तन होना चाहिये।

१८-भगवान्‌में इतना प्रेम बढ़ता है कि भगवान्‌को भक्त छोड़ ही नहीं सकता।

१९-नाम-जपादिका अभ्यास होनेसे जब अन्तःकरणका मल नाश हो जाता है तब भगवान्‌में प्रेम होता है।

२०-हर समय भगवान्‌के समीप रहनेकी उत्कण्ठा रखनी चाहिये। भगवान्‌के पास नित्य रहनेमें उत्कण्ठा ही प्रधान हेतु है। उत्कण्ठा तीव्र होनेपर कोई भी प्रतिबन्धक नहीं रह सकता।

२१-भगवान् चाहे न मिलें, पर अनन्य प्रेम जल्दी होना चाहिये।

२२-भगवान्‌में प्रेम होकर संसारमें जीना हो तो उससे बढ़कर आनन्द ही नहीं है।

२३-प्रेममें विह्वल होकर निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर भगवान्‌का नाम-जप करनेका नाम भजन है।

२४-जिस विद्याके द्वारा परमात्मामें प्रेम हो उसीका नाम सद्विद्या है।

२५-जिन शास्त्रोंके द्वारा संसारसे वैराग्य और परमेश्वरमें प्रेम हो उसीका नाम सत्-शास्त्र है।

२६-भजन, ध्यानका तीव्र अभ्यास करनेसे हृदय शुद्ध होता है, तभी सच्ची धारणा होती है। भगवान्‌में ही पूर्ण प्रेम होनेका उपाय करना चाहिये।

२७-प्रेमपूर्वक भजनमें ऐसा मग्न हो जाय कि शरीरका ज्ञान ही न रहे। तब आनन्द-ही-आनन्द है।

२८-काम करते हुए अधिक भजन होना तभीतक कठिन है जबतक प्रेम कम है।

२९-वही पुरुष धन्यवादका पात्र है जिसका अनन्य प्रेम होनेके कारण हर समय एकमात्र भगवान्‌में ही ध्यान रहता है यानी जिसको निरन्तर भगवान्‌का ही स्मरण रहता है। उसको फिर जीवन्मुक्तिसे भी क्या प्रयोजन हैं? वह तो दर्शन करनेयोग्य है।

३०-प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु प्रभुके प्रेममें कभी कलंक न लगने पावे।

३१-विश्वास ही सार है। बिना विश्वासके नारायणमें प्रेम नहीं होता, बिना प्रेमके नारायण मिलते नहीं और नारायणके मिले बिना संसारसे उद्धार होनेका और कोई भी उपाय नहीं है।

३२-जबतक भगवान्‌का प्रभाव नहीं जानते तभीतक संसारका चिन्तन होता है। भगवान्‌का प्रभाव जान लेनेपर उसमें श्रद्धायुक्त पूर्ण प्रेम हो जाता है, फिर दूसरा चिन्तन हो ही नहीं सकता।

३३-प्रेम होना चाहिये। मिलना भले ही कम हो। मैं तो प्रेमीका हूँ।

३४-भगवान् श्रीकृष्णकी मनमोहिनी मूर्तिको अपने हृदयसे कभी विसारना नहीं चाहिये।

३५-उस मोरमुकुटधारी, वंशीविहारीकी माधुरीमूर्ति और मीठी वाणीमें जब एक बार सुरति समा जाती है तो फिर वह लौटकर नहीं आती। चित्त उसीमें फँस जाता है।

३६-भगवान्‌में प्रेम हो जानेपर तो सांसारिक प्रेम अपने-आप ही कम

हो जाता है। सांसारिक प्रेमको हटानेके लिये कोई दूसरा साधन नहीं करना पड़ता।

३७-संसारके जिस काममें बहुत प्रेम होता है वह चित्तमें बस जाता है, वैसे ही प्रेम अधिक होनेपर भगवान् मनमें बस जाते हैं।

३८-प्रेमीको भगवान्‌के बिना मिले चैन नहीं पड़ती।

३९-जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिकी ओर देखती हुई पतिके इच्छानुसार सब काम करती है, उसी भाँति उस भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मोरमुकुटधारी, वंशीवट-विहारीकी माधुरीमूर्तिको अपने नेत्रोंके सामने देखता हुआ काम करता रहे।

४०-जहाँ-जहाँ नेत्र जाय वहाँ-वहाँ श्रीवासुदेव श्यामसुन्दरकी मूर्तिकी भावना करे।

४१-जहाँ-जहाँ नेत्र जाय वहाँ-वहाँ आनन्दमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मूर्तिका चिन्तन करते हुए, मनको भगवान्‌में रखते हुए सांसारिक काम करता रहे।

४२-मनसहित भजन करने और शास्त्रका अभ्यास करनेसे जितना लाभ एक वर्षमें होगा उतना लाभ बिना मनके करनेसे १०० वर्षमें भी नहीं हो सकता, आजकल लोगोंकी शीघ्र उन्नति नहीं होनेका यही कारण है।

४३-किसी क्षण नामोच्चारण करते-करते प्रेममें मग्न हो जाय तो उसी समय भगवान् प्रकट हो जायँ।

४४-प्रेमकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये और भगवान्‌के आगे रोना चाहिये।

४५-प्रेम परमात्माकी दयासे प्राप्त होता है। परमात्माकी कितनी दया है, खयाल करो कि हमलोगोंकी वृत्ति परमार्थकी तरफ जाती है।

४६-जहाँ प्रेम है, वहाँ बहुत जोर है।

४७-जब भगवान्‌में पूर्ण प्रेम और विश्वास हो जायगा तब तो चाहे जितना विषयी मनुष्योंका संग हो, फिर भगवान्‌की स्मृति भूली नहीं जा सकती।

४८-भगवान् बड़े प्रेमी हैं। जो ऐसे भगवान्‌की दोस्ती छोड़कर सांसारिक

तुच्छ स्त्री और अपने शरीरका दास होकर उनमें प्रेम करता है, वही पशु है।

४९-समय बीता जा रहा है। जो भी कुछ सांसारिक वस्तुएँ देखनेमें आती हैं, सब नाशवान् हैं, ऐसा जानकर इनसे प्रेम छोड़कर सत्यस्वरूप भगवान्से ही प्रेम करना चाहिये।

५०-भगवान् तो केवल प्रेम ही चाहते हैं।

५१-सांसारिक व्यसन चाहे जितना प्रबल हो, कोई डरकी बात नहीं, यदि प्रेमपूर्वक निरन्तर नारायणके नामका जप होता रहे। रास्ता सुधरनेका इससे बढ़कर और क्या उपाय है!

५२-जो प्रेम निरन्तर बना रहता है, उसीकी महिमा है।

५३-भगवान्के विछोहमें बीतनेवाला एक पल भी युगके समान लगना चाहिये।

५४-अनन्य प्रेम प्राप्त करनेके तीन साधन—(१) प्रेमी भगवान्को अपने चित्तसे कभी बिसारे नहीं। (२) प्रेमीके मनके अनुकूल चलना, यदि प्रेमीके मनकी बात नहीं जाने तो उनके हुकुमके अनुकूल चलना। (३) प्रेमीको सर्वस्व अर्पण कर देना।

५५-अपना मित्र अपार धनी भी हो तो भी उसका धन लेनेकी आशा नहीं करनी चाहिये। धन लेनेकी आशा प्रेममें कलंक लगानेवाली है।

५६-प्रेमकी रक्षा स्वयं करे, जैसे महाराज युधिष्ठिर अपने धर्मका पालन अपने-आप ही करते थे, इसी प्रकार अपनी इज्जतकी रक्षा अपने ही हाथ है।

५७-भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—"**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**" (४। ११) मुझसे जो प्यार करता है, वही मेरा प्रिय है, मुझसे जिसका जितना प्रेम है वह मुझे उतना ही प्यारा है—यह भगवान्का बर्ताव है। महापुरुषोंका भी ऐसा ही बर्ताव होता है।

५८-निष्कामभावसे प्राणिमात्रके साथ प्रेम करना भगवान्को मोल ले लेना है। यह बर्ताव महापुरुषोंद्वारा किया गया है। इस बातपर आँख मूँदकर विश्वास करना चाहिये। इसका पालन करनेसे महान् लाभ है।

५९-जिस प्रेममें ईर्ष्या न हो वह प्रेम ऊँचे दर्जेका है।

६०-भगवान्‌के प्रेममें मग्न हो जानेसे भी मनका नाश हो सकता है अथवा वह अपने अधीन हो सकता है। उस समय भी मनमें संसारकी स्फुरणा नहीं होती।

६१-भगवान्‌में बहुत जल्दी प्रेम होनेके उपाय—

(१) निष्कामभावसे भगवान्‌के नामका निरन्तर जप और स्वरूपका ध्यान करनेकी चेष्टा करना।

(२) भगवान्‌के गुण, प्रभाव और मर्म (तत्त्व) की कथा भगवान्‌के भक्तोंद्वारा सुनना, पढ़ना और कथन करना।

(३) भगवान्‌के आज्ञानुसार निष्कामभावसे सब कर्म भगवान्‌के लिये ही करना।

(४) मनमें भगवान्‌के मिलनेकी तीव्र इच्छा रखना और उनके नाम-गुणोंको सुनकर आनन्दमग्न होना।

६२-जिस दिन मनमें धैर्य नहीं होगा, जिस दिन श्रीभगवान्‌के बिना नहीं रहा जायगा उस दिन तो भगवान्‌को आना ही होगा। जबतक आप भगवान्‌का वियोग सहन कर रहे हैं, तभीतक उनका वियोग हो रहा है। जिस समय आप भगवान्‌के मिले बिना एक क्षण भी नहीं ठहर सकेंगे तथा विछोहके कारण आपका मन मछलीकी तरह तड़फड़ाने लगेगा, फिर भगवान्‌की ओरसे देर हो ही नहीं सकती। भगवान्‌को प्रकट होना ही होगा।

६३-संसारमें प्रेमके समान कुछ भी नहीं है, किन्तु प्रेमके प्रभाव और मर्मको कोई प्रेमी ही जानता है।

६४-प्रेमी भक्त प्रभुको जिस मूर्तिमें, जिस रूपमें और जिस समय प्रकट करना चाहता है वह लीलानिकेतन नटवर उस प्रेमीके अनन्य प्रेमसे आकर्षित होकर उसी मूर्ति और उसी रूपमें और उसी समय साक्षात् प्रकट हो जाता है।

६५-जिस प्रकार कामीको स्त्रीमें, लोभीको रुपयोंमें प्रेम होता है, उसी

प्रकार हमारा परमेश्वरमें प्रेम होना चाहिये।

६६-एकमात्र परमेश्वर ही प्रेम करनेलायक है।

६७-भगवान्‌के प्रेमी पुरुषोंका संग करनेसे, अन्तःकरण शुद्ध होनेसे और भगवान्‌की शरण लेकर भजनका अभ्यास करनेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

प्रश्न—काम ज्यादा होनेसे फुरसत नहीं मिलती कल्याणका मार्ग कैसे बैठे?

उत्तर—प्रेम होनेसे अपने-आप ही रास्ता बैठ सकता है।

६८-उत्तम यह है कि परमात्मासे कुछ भी नहीं कहे। किसी प्रकारकी खुशामद न करे, उनकी गरज हो तो आवें नहीं तो उनकी मर्जी।

६९-भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंसे सुनी हुई और शास्त्रोंमें पढ़ी हुई, श्रीपरमात्माके गुण, प्रभाव और प्रेमकी बातें निष्कामभावसे लोगोंमें कथन करनेसे भगवान्‌में बहुत महत्त्वका प्रेम हो सकता है।

७०-मान-अपमानको समान समझकर, निष्कामभावसे सबको भगवान्‌का स्वरूप जानकर सबकी सेवा करनी चाहिये। यों करनेसे भगवत्कृपासे आप ही प्रेम हो सकता है।

७१-आप उस प्रभुसे मैत्री क्यों नहीं करते? उसके समान प्रभु तथा प्रेमी और कौन मिलेगा? ऐसा हितैषी दूसरा कौन है?

७२-सब मतलबकी मनवार करनेवाले हैं। फिर आप उस प्रभुसे प्रेम क्यों नहीं करते? प्रभु तो आपसे कुछ भी नहीं माँगता। केवल उसे हर समय स्मरण रखना चाहिये। उसके नामका जप और ध्यान ही सार है, जप करनेसे ध्यान अपने-आप होने लगता है।

७३-भगवद्भक्तोंद्वारा श्रीभगवान्‌के गुणानुवाद और उनके प्रेम तथा प्रभावकी बातें सुननेसे अतिशीघ्र प्रेम हो सकता है। भक्तोंके संगके अभावमें शास्त्रोंका अभ्यास ही सत्संगके समान है।

७४-भगवान्‌के विषयको लेकर जो किसीसे भी प्रेम है वह भगवान्‌के साथ ही प्रेम है।

७५-श्रीभगवान्‌के प्रेमके समान कुछ भी नहीं है।

७६-प्रेमके मर्मको जो कोई जानता है, वही प्रेममें बिक जाता है।

७७-जबतक हम भगवान्‌के वियोगको सह रहे हैं तभीतक भगवान्‌का वियोग हो रहा है। जिस दिन हम श्रीभगवान्‌के वियोगमें गोपियोंकी भाँति विह्वल हो जावेंगे उसी दिन भगवान्‌को तुरन्त ही आना पड़ेगा।

७८-प्रेमी कभी भगवान्‌को बुलानेकी प्रार्थना नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि भगवान् अन्तर्यामी हैं और मर्मको समझनेवाले हैं तथा प्रेमके अधीन हैं फिर वह किसलिये खुशामद करे!

७९-श्रीपरमात्माके मिलनेकी तीव्र इच्छासे भी प्रेम बढ़ सकता है।

८०-श्रीपरमात्माके आज्ञानुकूल आचरणसे, उनके मनके अनुसार चलनेसे उनमें प्रेम हो सकता है। शास्त्रकी आज्ञाको भी परमात्माकी आज्ञा समझनी चाहिये।

८१-प्रेमको गुप्त रखना अच्छा है।

८२-प्रेम होनेसे ही भगवान्‌में मन रमता है।

८३-सच्चा प्रेमी उसीको मानना चाहिये जो प्रेमके लिये अपना आत्म-समर्पण कर सकता हो, जो अपने तन, मन, धन सर्वस्वको अपने प्रेमास्पदकी सम्पत्ति समझता हो।

८४-जो वस्तु अपने प्रेमीके काम आ गयी, वही सार्थक है, यों समझनेवाला ही यथार्थ प्रेमी है। ऐसा प्रेमी ही सर्वथा पूजनीय है।

८५-भगवान्‌से कुछ भी माँगना उचित नहीं, प्रेम केवल प्रेमके लिये ही करना चाहिये।

८६-संसारमें प्रेमके समान और कुछ भी नहीं है। उस प्रेमके मर्मको जाननेके लिये ही परमात्मासे मैत्री करनी चाहिये।

८७-अपने प्रियतम मित्रके लिये प्राणोंको भी तुच्छ समझना चाहिये। ऐसे प्रेमी ही भगवान्‌को प्यारे लगा करते हैं।

८८-भगवान् प्रेमके अधीन हैं। प्रेमी अपनी प्रेम-रज्जुसे भगवान्‌को बाँध सकता है। भगवान् अपने प्रेमीका साथ कभी नहीं छोड़ते।

८९-पाँच बातें अमूल्य हैं—प्रेम, ज्ञान, श्रद्धा, उपरामता और वैराग्य—ये

रुपयोंसे नहीं मिलती हैं। इनमें प्रेम ही प्रधान है। प्रेमवालेको साकार-निराकार स्वरूपकी प्राप्ति होती है। ज्ञानवालेको सच्चिदानन्दघनकी प्राप्ति होती है।

९०-श्रीभगवान्‌की प्राप्ति प्रेम बिना नहीं होती, प्रेम तत्पर हुए बिना होता नहीं। श्रीभगवान्‌की इच्छा यदि उनकी भक्तिका प्रचार कराना है तो केवल यही उद्देश्य होना चाहिये कि श्रीभगवान् राजी हों। अपना मान, बड़ाई, पूजा, स्वार्थ नहीं चाहे, शरीरका आराम भी नहीं देखे।

९१-अपने लोगोंमें प्रेम कहाँ है। प्रेम होनेके बाद तो रोमाञ्च और अश्रुपातकी धारा चल जाती है।

९२-भगवान्‌में प्रेम होनेका उपाय है भगवत्-भक्ति। भगवत्-भक्ति ही प्रेमका स्वरूप है। भगवान्‌में जो अत्यन्त अनुराग है उसका नाम प्रेम है और उस भगवत्-भक्तिके जो प्रकार हैं, उनके पालनसे भगवत्‌में अनन्य प्रेम हो जाता है।

९३-मनमें खूब जोश रखना चाहिये कि एक भी अवगुण क्यों रहे यानी दैवी सम्पदाके सभी २६ लक्षण घटने लग जायें। यह स्थिति श्रीभगवान्‌के निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर ध्यानसहित जप होनेसे स्वयमेव प्राप्त हो जाती है।

९४-भगवान्‌में ऐसी लौ लगानी चाहिये कि शरीरकी सुधि भी न रहे। यदि सब समय एक-सी लगन लगी रहे तो उद्धार होना कौन बड़ी बात है।

९५-जो हर समय भगवान्‌में लौ लगाये रहता है, वह अन्तमें उन्हींमें समा जाता है।

९६-मग्न तो केवल भगवान्‌में होना चाहिये और ऐसा होना चाहिये कि मन उन्हींके आनन्दमें रम जाय, उनके सिवा और कुछ भासे ही नहीं।

९७-जिस पुरुषका मन भगवान्‌में रम जाता है, उसको सारा कुटुम्ब और धन झंझट मालूम होने लगता है, फिर पीछे झंझट बढ़ानेवाले कामकाज भी आप-से-आप कम होने लगते हैं।

९८-हरिचरणोंमें प्रेम होनेके लिये आठ बातें सार हैं—

१. जो कुछ सुख-दुःखादि आकर प्राप्त हो उसको भगवान्‌की आज्ञासे

प्राप्त हुआ मानकर आनन्दके सहित स्वीकार करना भगवान्की शरण है।

२. सबको भगवान्की भक्तिमें लगानेकी कोशिश जीवोंकी परम सेवा है।

३. भगवद्भक्तोंका संग, यदि उनका संग नहीं मिले तो उनके भक्तोंका संग भी बहुत लाभदायक है।

४. एकान्तमें परमेश्वरके ध्यान करनेकी चेष्टा करे, यदि ध्यान नहीं लगे तो ध्यान लगानेके लिये श्रीगीताजीके ध्यानविषयक श्लोकोंके अर्थका विचार करना चाहिये।

५. परमेश्वरके स्वरूपका चिन्तन करते हुए चलते-फिरते प्रत्येक क्रिया करते समय परमेश्वरके नामके जपका अभ्यास।

६. भगवान्के सिवाय और किसी चीजकी भी इच्छा नहीं करनी। केवल भगवान्के मिलनेकी उत्कट इच्छा करनी चाहिये।

७. जिस कामसे भगवान् राजी होवें उस कामको करनेकी चेष्टा यानी हिंसा-वर्जित सदाचार।

८. निष्कामभावसे सब जीवोंकी सेवा जिस प्रकारसे मनुष्योंको तथा सब जीवोंको सुख पहुँचे वैसी चेष्टा।

उपर्युक्त बातें काममें लानेसे भगवान्में बहुत ही जल्दी प्रेम हो सकता है। इनमेंसे एक भी बात काममें लावे तो परमात्मा मिल सकते हैं। इन बातोंमें एक-से-एक अधिक लाभदायक हैं, याने आठ नम्बरसे सात नम्बरवाली अधिक लाभदायक है और सात से छः वाली इसी प्रकार क्रमसे समझना चाहिये।

प्रेम-विरह-व्याकुलता

१-व्रजराज भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम होनेमें ही इस जीवनकी सार्थकता है। जिस बड़भागीने इस दिव्य, अनन्य एवं विशुद्ध प्रेम-पीयूषका पान कर लिया, उसका जन्म सफल हो जाता है। उसकी युग-युगकी, जन्म-जन्मोंकी विषय-पिपासा बुझ जाती है, शान्त हो जाती है।

२-भगवान्‌के मिलनेके बहुत-से उपायोंमेंसे सर्वोत्तम उपाय है "सच्चा प्रेम"।

३-भवतापसे सन्तप्त प्राणी भगवत्प्रेमकी पावन मन्दाकिनीमें निमज्जन करके ही पूर्ण शान्ति प्राप्त कर सकता है। यही वह परम रस है जिसे पीकर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है।

४-परमात्माकी ही भाँति प्रेमका स्वरूप भी अनिर्वचनीय है।

५-प्रेम साधन भी है और साधनोंका फल (साध्य) भी।

६-प्रेमकी द्वैत-अद्वैत, भेद-अभेदसे विलक्षण अनिर्वचनीय स्थिति है।

७-गूँगेके स्वादकी तरह वह वाणीका विषय नहीं होता।

८-प्रेमका वास्तविक महत्त्व कोई परमात्माका अनन्य प्रेमी ही जानता है।

९-प्रेमका मूल्य भी कोई विरले ही जानते हैं।

१०-विशुद्ध प्रेम होनेपर जो आनन्द होता है उसकी महिमा अकथनीय है।

११-ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ प्रेम न हो। प्रेमियोंका प्रेम और ज्ञानियोंका आनन्द सब जगह है।

१२-प्रिय और प्रेममें कोई अन्तर नहीं है।

१३-संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें आनन्द व्याप्त न हो। प्रेम उसका स्वरूप है। वह सब जगह है।

१४-प्रेमके सिवा दूसरी वस्तु नहीं है। प्रेम ही आनन्द है और आनन्द ही प्रेम है।

१५-भगवान् सगुण-साकारकी उपासना करनेवालोंके लिये प्रेममय बन जाते हैं और निर्गुण-निराकारकी उपासना करनेवालोंके लिये आनन्दमय बन जाते हैं।

१६-प्रेमका स्वरूप अलौकिक बतलाया गया है, क्योंकि वह लोकसे सर्वथा विलक्षण है।

१७-दिव्य, अनन्य एवं विशुद्ध प्रेम तो तीनों गुणोंसे अतीत और कामनाओंसे रहित होता है, वह प्रतिक्षण बढ़ता है, कभी घटता नहीं, वह

सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होता है, उसे वाणीद्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, वह तो अनुभवकी वस्तु है।

१८-प्रेमको पाकर प्रेमी सदा आनन्दमें मस्त रहता है।

१९-प्रेमके प्राप्त होनेपर मनुष्य न तो किसी भी वस्तुकी इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी भी वस्तुमें आसक्त होता है और न (विषयभोगोंकी प्राप्तिमें) उसे उत्साह होता है।

२०-प्रेमकी पूर्णता उस दिव्य, अनन्य एवं विशुद्ध प्रेममें ही है, जहाँ प्रेम, प्रेमी और प्रियतमकी एकता होती है।

२१-प्रेममें प्रेमी और प्रेमास्पदका नित्य ऐक्य-शाश्वत संयोग बना रहता है।

२२-माधुर्यभावसे भी यह अद्भुत प्रेमभाव विलक्षण है। माधुर्यभावके भी दो स्वरूप हैं—स्वकीयाभाव और परकीयाभाव, परम श्रेष्ठ सती-शिरोमणि पतिव्रता नारीका अपने प्रियतम पतिके प्रति जो भाव होता है, वही स्वकीयाभाव है। तथा परस्त्रीका परपुरुषमें जो गुप्त प्रेम होता है, उसी भावसे जो भगवान्‌के दिव्य स्वरूपमें उच्च श्रेणीका प्रेम हो, उसे परकीयाभाव कहते हैं। वह अनन्य प्रेमी इन सभी भावोंसे ऊपर उठा होता है।

२३-दिव्य प्रेममें बड़े-छोटेकी कोई श्रेणी नहीं है। वहाँ दोनोंकी समान अवस्था है।

२४-अनन्य और विशुद्ध प्रेममें गुण और प्रभावकी विस्मृति है, स्मृति होनेपर भी उनका कोई मूल्य नहीं है। यहाँ तो दोनोंमें अनिर्वचनीय ऐक्य है। वहाँ सर्वशक्तिमान् और सर्वान्तर्यामी कहकर स्तवन नहीं किया जाता। स्तुतिकी अवस्था तो बहुत पहले ही समाप्त हो जाती है। अब तो कौन सर्वशक्तिमान् और कहाँका सर्वेश्वर। दोनों एक हैं, समान हैं, दोनों ही दोनोंके प्रेमी और प्रियतम हैं, इनमें परस्पर हेतुरहित सहज प्रेम होता है।

२५-प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पदमें भेद नहीं रहता। भक्ति, भक्त और भगवन्त—सब एक हो जाते हैं।

२६-प्रेम, प्रेमी और प्रेमपात्र—ये देखनेमें तीन होनेपर भी वास्तवमें एक हैं। इनका तत्त्व सदा सबकी समझमें नहीं आता। इन्हें एकरूप ही

जानना चाहिये।

२७-इस दिव्य प्रेमकी अनुभूति निराली ही है। यहाँ न द्वैत है न अद्वैत। दोनोंसे विलक्षण स्थिति है। प्रेमी और प्रियतमका नित्य-नूतन प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता है।

२८-प्रेमके दिव्य भावको वाणीद्वारा व्यक्त करना असम्भव है। यहाँ प्रेमके सिवा कुछ रहता ही नहीं। इन प्रेमियोंका मिलन भी बड़ा ही विलक्षण—अत्यन्त अलौकिक होता है। यहाँ अद्वैत होते हुए भी द्वैत है और द्वैत होते हुए भी अद्वैत। हमारे दोनों हाथ परस्पर मिलकर सटकर एक हो जाते हैं, उस समय ये दो होते हुए भी एक हैं और एक होते हुए भी दो हैं। इस प्रकार यहाँ न भेद है न अभेद।

२९-जहाँ पूर्णरूपसे प्रेम है, वहाँ आदर-सत्कार तो एक विघ्न है। क्या कोई स्वयं ही अपना आदर करता है।

३०-मुक्ति तो भगवत्प्रेमका पासंगमात्र है, उस प्रेमधनको छोड़कर पासंगकी इच्छा करना अत्यन्त लज्जाका विषय है।

३१-प्रेममें स्वार्थकी गन्ध भी नहीं होनी चाहिये।

३२-स्वार्थकी भावना निष्काम प्रेमके लिये कलंकस्वरूप है।

३३-जहाँ स्वार्थका भाव आया, वहाँ प्रेमका टूटना प्रारम्भ हुआ।

३४-स्वार्थ और अहंकार—ये दोनों ही प्रेम-मार्गमें बड़े बाधक हैं।

३५-प्रभुकी ही प्रसन्नतामें प्रसन्न रहना चाहिये, उनसे अपनी खुशामद करानेकी इच्छा रखना भी एक प्रकारका स्वार्थ ही है।

३६-हेतु या कामना ही प्रेमका दूषण है।

३७-निष्काम प्रेममें कामनाकी गन्ध भी नहीं है।

३८-भगवत्प्रेम भी यदि किसी कामनासे किया जाय तो वह सकाम कहलाता है। सकाम प्रेममें दिव्यता, अनन्यता एवं विशुद्धताका अभाव होता है।

३९-संसारकी चिन्ताएँ प्रेमीका स्पर्श भी नहीं कर सकतीं, उसकी दृष्टिमें प्रेमके सिवा और कुछ रह ही नहीं जाता।

४०-लौकिक प्रेम भोग-कामनाओं और दुर्वासनाओंसे वासित होनेके कारण शुद्ध नहीं होता।

४१-जहाँ वासनाका आधिपत्य है वह प्रेम नहीं आसक्तिमूलक मोह है।

४२-लौकिक प्रेमके आलम्बन क्षणिक एवं नाशवान् होते हैं, अतः वह भगवत्प्रेमके सामने हेय ही है।

४३-परमेश्वरमें प्रेम करनेका हेतु केवल परमेश्वर या उनका प्रेम ही हो, प्रेमके लिये ही प्रेम किया जाय, अन्य कोई हेतु न रहे।

४४-भगवान्के साथ किसी भी भावको लेकर प्रेम किया जाय वह आदर्श ही है।

४५-भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे यदि किसीसे भी प्रेम किया जाता है तो वह भगवान्के ही लिये समझा जाता है।

४६-जब दो प्रेमी मिलते हैं तो एक अपूर्व आनन्दकी बाढ़-सी आ जाती है। ऐसे प्रेम-सम्मेलनको देखकर प्रभु भी उनके हाथ बिक जाते हैं।

४७-सबको साक्षात् भगवान्का स्वरूप समझकर ही उनसे प्रेम करना तो परम पवित्र प्रेम है।

४८-अहंकार, अभिमान, ममता, आसक्ति आदि दोषोंको लेकर अथवा व्यक्तिगत स्वार्थवश जो प्रेम होता है, वही दूषित समझा जाता है।

४९-क्षणभंगुर, नाशवान्, दृश्य पदार्थोंको सत्य मानकर उनके सम्बन्धसे होनेवाले भ्रमजन्य सुखको सुख मानकर उनमें प्रेम करना अज्ञानपूर्ण प्रेम है।

५०-भगवान्में जितना प्रेम बढ़ता जायेगा, भगवानका उतना ही ज्ञान होता जायेगा, उतना ही सांसारिक विषयोंमें वैराग्य होकर उनमें स्वतः ही आनन्द कम प्रतीत होने लगेगा। धीरे-धीरे भगवान्के प्रेमका आनन्द बढ़ेगा और फिर उसके सामने त्रिलोकीका आनन्द भी तुच्छ प्रतीत होगा।

५१-ज्यों-ज्यों भगवान्में प्रेम बढ़ता है त्यों-त्यों विषयोंमें आनन्द कम होता जाता है, यही प्रेमकी कसौटी है।

५२-भगवान्की ओरसे विषयोंका प्रलोभन मिलनेपर मनमें पश्चात्ताप

होकर यह भाव उदय हो कि ''अवश्य ही मेरे प्रेममें कोई दोष है, मेरे मनमें सच्चा विशुद्ध भाव होता और इन स्वार्थकी बातोंको सुनकर यथार्थमें मुझे क्लेश होता तो भगवान् इनके लिये मुझे कभी न ललचाते''।

५३-विनय, अनुरोध और भय दिखलानेपर भी परमात्माके प्रेमके सिवा किसी भी हालतमें दूसरी वस्तु स्वीकार न करे, अपने प्रेम-हठपर अटल-अचल रहे। वह यही समझता रहे कि भगवान् जबतक मुझे नाना प्रकारके विषयोंका प्रलोभन देकर ललचा रहे हैं और मेरी परीक्षा ले रहे हैं, तबतक मुझमें अवश्य ही विषयासक्ति है। सच्चा प्रेम होता तो एक अपने प्रेमास्पदको छोड़कर दूसरी बात भी मैं न सुन सकता।

५४-विषयोंको देख, सुन और सहन कर रहा हूँ, इससे यह सिद्ध है कि मैं सच्चे प्रेमका अधिकारी नहीं हूँ। तभी तो भगवान् मुझे लोभ दिखा रहे हैं। उत्तम तो यह था कि मैं विषयोंकी चर्चा सुनते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ता। ऐसी अवस्था नहीं होती, इसीलिये निःसंदेह मेरे हृदयमें कहीं-न-कहीं विषयवासना छिपी हुई है। यह है विशुद्ध प्रेमके ऊँचे साधनका स्वरूप।

५५-सर्वस्व समर्पण करनेपर भी यदि एक रत्तीभर प्रेम मिले तो सर्वस्व दे डालना चाहिये। सच्चा प्रेमी ऐसा ही करता है।

५६-सच्चे प्रेमी सिरकी बाजी लगाकर ही प्रभुका प्रेम प्राप्त करते हैं।

५७-संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो प्रेमके बदले न दी जा सके। तन, मन, धन, प्राण सभी इसपर निछावर किये जा सकते हैं।

५८-प्रेमकी उत्पत्ति सेवासे होती है। भगवत्-प्रेमकी प्राप्ति भी सेवा और भक्तिसे ही होती है।

५९-सेवासे भी भक्तिका दर्जा ऊँचा है। सेवा तो हर किसीकी हो सकती है, किन्तु भक्ति हर किसीकी नहीं होती। भक्तिमें सेवा तो रहती ही है, पर साथमें श्रद्धा और प्रेमका भी समावेश रहता है, प्रेमका महत्त्व तो भक्तिसे भी अधिक है।

६०-प्रेम खरीदनेके लिये भगवान्‌का नाम ही पूँजी है। इसलिये निरन्तर

नाम-जपका अभ्यास करना चाहिये।

६१-जिन्हें प्रेम प्राप्त करना हो उन्हें दो बातोंको भूल जाना चाहिये। दूसरेके प्रति किया हुआ उपकार और दूसरेके द्वारा किया हुआ अपना अपकार एवं दो बातें कभी नहीं भुलानी चाहिये—

१. हमारे प्रति दूसरेका किया हुआ उपकार और

२. अपने द्वारा किया हुआ दूसरेका अपकार।

६२-प्रेमकी वृद्धिके लिये मन, वाणी और व्यवहारमें निष्कामभाव तथा अहिंसा और निरहंकारताका होना बहुत ही आवश्यक है, जहाँ स्वार्थ और अहंकार होता है वहाँ प्रेम नहीं ठहर सकता।

६३-जब सत्संग, भजन, चिन्तन, निर्मलता, वैराग्य, उपरति, उत्कट इच्छा और परमेश्वर-विषयक व्याकुलता क्रमसे होती है तब भगवान्‌में सच्चा, विशुद्ध प्रेम होता है।

६४-जिस चाहसे वे प्रकट हो जाते हैं वही चाह असली चाह समझनी चाहिये। अतः जबतक वे न आवें चाह बढ़ाता ही रहे। घड़ा भर जानेपर पानी अपने-आप ऊपरसे बह चलेगा।

६५-वह चाह कैसी होनी चाहिये, इस बातको प्रभु ही पहचानते हैं।

६६-प्रभुसे हमारा बिछोह इसीलिये हो रहा है कि उनके वियोग (बिछोह) में हमें व्याकुलता नहीं होती। जब हम ही उनका वियोग सहनेके लिये तैयार हैं और कभी उनके वियोगमें हमारे मनमें व्याकुलता या दुःख नहीं होता तो प्रभुको ही क्यों परवा होने लगी?

६७-ऊपरसे हम उनके दर्शनके लिये लालायित-से दीखते हैं, परन्तु भीतरसे उसे पानेकी लालसा कहाँ है? मुँहसे हम भले ही न कहें कि अभी ठहरो, परन्तु हमारी क्रियासे यही सिद्ध होता है। प्रभुके प्रकट होनेमें विलम्ब सहन करना ही उन्हें ठहराना है।

६८-खुशीसे हम उनके बिना जी रहे हैं। इस हालतमें वे यदि न आवें तो इसमें उनका क्या दोष है? प्रकट होनेके लिये तो वे तैयार हैं, पर जबतक हमारे अंदर उत्सुकता नहीं होती तबतक वे आवें भी कैसे? उनका दर्शन

प्राप्त करनेके लिये आवश्यकता है प्रबल चाहकी।

६९-उसे इतना व्याकुल कर देना चाहिये कि हमारे बिना वह एक क्षण भी न रह सके। फिर उसे हार माननी ही पड़ेगी, आनेके लिये बाध्य होना ही पड़ेगा। हमें व्यवस्था ही ऐसी कर देनी चाहिये, प्रेमसे उन्हें मोहित कर देना चाहिये। फिर तो धक्का देनेपर भी वे नहीं हटेंगे।

७०-प्रेमीके वियोगमें जहाँ प्राण व्याकुल हो उठें, वहाँ प्रेमकी पराकाष्ठा समझनी चाहिये। जलके वियोगमें मछली तड़प उठती है यह तड़पन उच्च श्रेणीका प्रेम है।

७१-यदि हमारे भीतर तड़पन होती और इसपर भी वे न आते तो हमें कहनेके लिये गुंजाइश थी।

७२-जो हरिके लिये जैसे लालायित है उसके लिये हरि भी वैसे ही लालायित रहते हैं।

७३-प्रभु तो इस बातके लिये सदा उत्सुक रहते हैं कि कोई रास्ता मिले तो मैं प्रकट होऊँ। किंतु हमी लोग उनके प्रकट होनेमें बाधक हो रहे हैं।

७४-भगवान्‌के प्रकट होनेमें जो विलम्ब हो रहा है उसमें मुख्य कारण हमारी टानकी कमी ही है। प्रभु तो प्रेम और दयाकी मूर्ति ही हैं। फिर वे आनेमें विलम्ब क्यों करते हैं।

७५-सीताका जैसा उत्कट प्रेम भगवान् रामचन्द्रजीमें था वैसा ही प्रेम यदि हमलोगोंका प्रभुमें हो जाय तो प्रभु हमारे लिये भी तैयार हैं।

७६-महात्माओंकी आज्ञामें तत्पर हुए राजा मयूरध्वजकी तरह मौका पड़नेपर अपने पुत्रका मस्तक चीरनेमें भी नहीं हिचकनेवाले प्रेमी भक्तको भगवान् प्रत्यक्ष दर्शन दे सकते हैं।

७७-ऋषिकुमार सुतीक्ष्णकी तरह प्रेमोन्मत्त होकर विचरनेसे भगवान् मिल सकते हैं।

७८-कुमार भरतकी तरह राम-दर्शनके लिये प्रेममें विह्वल होनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

७९-गोपियोंके प्रेमको देखकर ज्ञान और योगके अभिमानको त्यागने-

वाले उद्धवकी तरह प्रेममें विह्वल होनेपर भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

८०-जब प्रेम हो जाता है तो भगवान् प्रत्यक्ष मूर्तिमान् होकर प्रकट हो जाते हैं।

८१-प्रेममूर्ति परमेश्वर सब काल तथा सब देशमें सब मनुष्योंको भक्तिवश होकर अवश्य ही प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं।

८२-जो प्रेमसे उनकी उपासना करते हैं, वे भाग्यवान् बहुत ही शीघ्र उन प्रेममयके प्रेमपूर्ण वदनारविन्दका दर्शन कर कृतार्थ होते हैं।

८३-भगवान्से सच्चा प्रेम होनेमें तथा दो मित्रोंकी तरह भगवान्की मनोमोहिनी मूर्तिके प्रत्यक्ष दर्शन मिलनेमें विश्वास ही मूल कारण है।

८४-प्रेम ही उनकी महिमामयी मूर्ति है, इसलिये प्रेमी पुरुष ही उनको पहचान सकते हैं।

८५-वह प्रेमतत्त्वज्ञ प्रियतम स्वयं ही मिले बिना नहीं रह सकता। उसे गरज होगी तो स्वयं ही आवेगा, भक्त क्यों मिलनेके लिये परेशान हो?

८६-प्रभु तो प्रेमका लोभी है, प्रेम होगा तो अपने-आप दौड़ा आवेगा, न होगा तो बुलानेसे भी नहीं आवेगा। इसीलिये जो निष्काम प्रेमी होते हैं, वे भगवान्को बुलाते भी नहीं।

८७-प्रेमके बिना भगवान्का काम नहीं चलता, उनके सब कल-कारखाने बंद हो जाते हैं।

८८-वास्तवमें न तो भगवान्को दर्शन देनेके लिये बुलानेकी आवश्यकता है, न रोकनेकी। बिना किसी कामना या हेतुके ही भगवान्में केवल प्रेम बढ़ाना आवश्यक है।

८९-अहंकारसे दूर रहकर संयोग-वियोगकी चिन्तासे बेपरवाह होकर, उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ता रहे इसीके लिये सारा प्रयत्न—सम्पूर्ण चेष्टा होनी उचित है।

९०-भगवत्प्रेमकी अवस्था ही अनोखी होती है। भगवान्का प्रसंग चल रहा है, उसकी मधुर चर्चा चल रही है, उस समय यदि स्वयं भगवान् भी आ जायँ तो प्रसंग चलता रहे, भंग न होने दे।

९१-प्रियतमकी चर्चामें एक अद्भुत मिठास होती है, जिसकी चाट लग जानेपर और कुछ सुहाता ही नहीं।

९२-प्रीतिकी रीति अनोखी है। प्रभुकी प्रीतिका रस जिसने पा लिया उसे और पाना ही क्या रहा? प्रभु तो केवल प्रेम देखते हैं। स्वयं प्रभुसे बढ़कर प्रभुका प्रेम है।

९३-प्रभुके साथ हमारा व्यवहार वैसा ही होना चाहिये जैसा स्त्रीका अपने पतिके साथ। जैसे स्त्री अपने प्रेम और हावभावसे पतिको मोहित कर लेती है, वैसे ही हमें भगवान्‌को अपने प्रेम और आचरणसे मोहित कर लेना चाहिये। उसे अपनेमें आसक्त भी कर ले और खुशामद भी न करे। फिर तो वह एक पलके लिये भी हमारे द्वारपरसे हटनेका नहीं। वह प्रेमका भिखारी प्रेमका बंदी बना बैठा है। जायगा कहाँ।

९४-प्रभुको वशीभूत करनेका ढंग स्त्रीसे सीखना चाहिये। इसी प्रकारका सम्बन्ध उनसे जोड़ना चाहिये। यही माधुर्य भाव है। बाहरका वेष न बदले, भीतर प्रेमकी प्रगाढ़तामें उसीका बन जाय। यही उन्हें प्राप्त करनेका सर्वोत्तम उपाय है।

९५-पति पत्नीके प्यारको ठुकरा ही कैसे सकता है? इसी प्रकार प्रभु भी अपने भक्तके प्यारका तिरस्कार कैसे कर सकते हैं। ऐसा हो जानेपर उनसे हमारे बिना रहा ही कैसे जायेगा? वे तो सदा प्रेमके अधीन रहते हैं। एक बार प्रभुको अपने प्रेम-पाशमें बाँध लें, फिर तो वे सदाके लिये बँध जाते हैं।

९६-दो प्रेमियोंमें यदि न बोलनेकी शर्त लग लाय तो अधिक प्रेमवाला ही हारेगा। पति-पत्नीमें यदि न बोलनेका हठ हो जाय तो वही हारेगा, जिसमें अधिक स्नेह होगा। इसी प्रकार जब भक्त और भगवान्‌में होड़ होती है तो भगवान्‌को ही हारना पड़ता है, क्योंकि प्रभुसे बढ़कर प्रेमी कोई नहीं है।

९७-जैसे नन्हें बछड़ेको छोड़कर गौ वनमें चरने जाती है, वहाँ घास चरती है, उस गौका प्रेम घासमें गौण है, बछड़ेमें मुख्य है और अपने जीवनमें अनन्य है, बछड़ेके लिये घासका एवं जीवनके लिये वह बछड़ेका भी त्याग कर सकती है। इसी प्रकार उत्तम साधक सांसारिक कार्य करते

हुए भी अनन्यभावसे परमात्माका चिन्तन किया करते हैं।

९८-अनन्य प्रेमका साधारण स्वरूप यह है—एक भगवान्‌के सिवा अन्य किसीमें किसी समय भी आसक्ति न हो, प्रेमकी मग्नतामें भगवान्‌के सिवा अन्य किसीका ज्ञान ही न रहे। जहाँ-जहाँ मन जाय वहीं भगवान् दृष्टिगोचर हों। यों होते-होते अभ्यास बढ़ जानेपर अपने-आपकी विस्मृति होकर केवल एक भगवान् ही रह जायँ। यही विशुद्ध अनन्य प्रेम है।

९९-साधारण भगवत्-प्रेमी साधक अपना मन परमात्मामें लगानेकी कोशिश करते हैं, परन्तु अभ्यास और आसक्तिवश भजन-ध्यान करते समय भी उनका मन विषयोंमें चला ही जाता है। जिनका भगवान्‌में मुख्य प्रेम है, वे हर समय भगवान्‌को स्मरण रखते हुए समस्त कार्य करते हैं और जिनका भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो जाता है उनको तो समस्त चराचर विश्व एक वासुदेवमय ही प्रतीत होने लगता है। ऐसे महात्मा बड़े दुर्लभ हैं (गीता ७। १९)।

१००-अनन्य प्रेमीभक्तोंमें कई तो प्रेममें इतने गहरे डूब जाते हैं कि वे लोकदृष्टिमें पागल-से दीख पड़ते हैं। किसी-किसीकी बालकवत् चेष्टा दिखायी देती है। उनके सांसारिक कार्य छूट जाते हैं। कई ऐसी प्रकृतिके भी प्रेमी पुरुष होते हैं जो अनन्यप्रेममें निमग्न रहनेपर भी महान् भागवत श्रीभरतजीकी भाँति या भक्तराज श्रीहनुमान्‌जीकी भाँति सदा ही "रामकाज" करनेको तैयार रहते हैं। ऐसे भक्तोंके सभी कार्य लोकहितार्थ होते हैं। ये महात्मा एक क्षणके लिये भी परमात्माको नहीं भुलाते, न भगवान् ही उन्हें कभी भुला सकते हैं।

१०१-स्वामीमें अनन्यप्रेम, नित्य संयोग और उनकी प्रसन्नताके लिये ही भक्तकी सारी चेष्टाएँ होती हैं। अपने प्रेमास्पद सगुण ब्रह्मपर तन, मन, धनको और अपने-आपको न्योछावर करके वह प्रेम और आनन्दमें मुग्ध हो जाता है। केवल एकमात्र भगवान् ही उसके परम आश्रय, जीवन, प्राण, धन और आत्मा हैं। इसलिये वह उनके वियोगको एक क्षण भी नहीं सह

सकता। उस प्यारे प्रेमीके नाम, रूप, गुण, प्रेम, प्रभाव, रहस्य और चरित्रोंका श्रवण, मनन और कीर्तन करता हुआ नित्य-निरन्तर उसमें रमण करता है।

१०२-जैसे कामिनीके नूपुरोंकी झनकार सुनकर कामी पुरुषके हृदयमें काम जाग्रत् हो उठता है, वैसे ही यदि प्रेमीके कानोंमें भगवन्नामकीर्तनकी ध्वनि पड़ जाती है तो वह प्रेममें विभोर हो जाता है। वह यदि किसी भगवद्रसिक महापुरुषके दर्शन कर लेता है तो उसके नेत्र गुलाबके फूलकी तरह खिल उठते हैं और उनसे झर-झर अश्रुपात होने लगता है।

१०३-प्रेमी तो प्रेमको ही देखता, प्रेमको ही सुनता और प्रेमका ही वर्णन तथा चिन्तन करता है। उसके मन, प्राण और आत्मा प्रेमकी ही गङ्गामें अनवरत अवगाहन करते रहते हैं।

१०४-प्रेमी सर्वत्र प्रेममय भगवान्‌को ही देखता है, सब कुछ भगवान्‌में ही देखता है, ऐसी दृष्टि रखनेवालेकी नजरसे भगवान् अलग नहीं हो सकते तथा वह भी भगवान्‌से अलग नहीं हो सकता।

१०५-भगवान् ऐसे भक्तका लोकोत्तर अनुराग देख अपनी महेश्वरता भूल जाते और मुग्ध होकर अपने प्राणप्रिय भक्तको निहारते रहते हैं, उसके साथ उसीके अनुरूप बनकर उसकी इच्छाके अनुकूल विग्रह धारणकर खेलते, नृत्य करते, गाते, बजाते और आनन्दित होते रहते हैं।

१०६-प्रेमी भक्त मिलन और बिछोहकी चिन्तासे भी परे होता है। उसे तो केवल प्रेम करना है, वह भी प्रेमके लिये।

१०७-प्रेमी तो सब कुछ उस प्रियतमके ही सुखके लिये करता है। उसे यदि मिलनमें सुख मिलता हो तो स्वयं ही आकर मिले। बिछोहसे दु:ख होता हो तो कभी यहाँसे दूर न जाय।

१०८-भगवत्प्रेमीका पूजन, खाना, पीना, रोना, गाना आदि सब भगवत्प्रीत्यर्थ होना चाहिये। प्रेमीका प्रेममय भगवान्‌के सिवा और कोई लक्ष्य न हो।

१०९-प्रेमी उस दिव्य प्रेमका साक्षात् स्वरूप होता है। उसकी वाणी प्रेमसे ओतप्रोत तथा शरीर और मन प्रेमरसमें सराबोर होते हैं। उसका रोम-

रोम प्रेमानन्दसे थिरकता दिखायी देता है। उसके साथ सम्भाषण, उसका चिन्तन तथा उसके निकट गमन करनेसे अपने अंदर प्रेमके परमाणु आते हैं, उसका स्पर्श पाकर नीरस हृदयमें भी प्रेमका संचार होता है। बड़े-बड़े नास्तिक भी उसके सम्पर्कमें आनेपर सब कुछ भूलकर प्रेमदीवाने बन सकते हैं। उसके अनन्य अनुराग या अलौकिक भावोद्रेकको ठीक-ठीक हृदयंगम करानेके लिये उपयुक्त शब्द नहीं है। समझानेके लिये उसके भावको चाहे जो भी भाव कह दिया जाय, वास्तवमें वह सब भावोंसे ऊपर उठा होता है।

११०-वह अनन्य प्रेमी भक्त पूर्ण प्रेममें डूबा रहता है। भगवान्से वह भिन्न नहीं, भगवान् उससे भिन्न नहीं। इस अवस्थामें न भय है न संकोच, मान, आदर और सत्कारका भी वहाँ कुछ खयाल नहीं रहता, बड़े-छोटेका कोई लिहाज नहीं किया जाता। उन (भक्त और भगवान्) में न कोई उत्तम है न मध्यम। दोनों समान हैं।

१११-अनन्य प्रेमीकी दृष्टिमें सर्वत्र और सदा ही दिव्य प्रेमकी अखण्ड ज्योति जगमगाती रहती है। वह सम्पूर्ण जगत्पर समानरूपसे प्रेमामृतकी वर्षा करता है। उसकी दृष्टिमें कोई घृणा या द्वेषका पात्र नहीं है। उसके लिये सर्वत्र ही प्रेमका महासागर लहराता रहता है।

११२-भगवान्के साथ प्रेमीका एक क्षणके लिये भी कभी वियोग नहीं होता। भगवान् उसके अधीन होते हैं, उसके हाथों बिके रहते हैं। उसका साथ छोड़कर कहीं जाते ही नहीं।

११३-प्रेमीको प्रभु त्याग नहीं सकते।

११४-गङ्गा और समुद्र मिलकर एक-से हो जाते हैं, किन्तु भगवान् और अनन्यप्रेमी भक्तका दिव्य मिलन इनसे भी विलक्षण और उत्कृष्ट है। वह अलौकिक एवं अनिर्वचनीय अवस्था है। भेद-अभेदसे परेकी फलरूपा स्थिति है। यह मिलन नित्य है।

११५-भगवान्के मिलनेपर भगवान् जब भक्तको हृदयसे लगाते हैं तब वस्त्रादिका व्यवधान भी उसको विघ्नरूप-सा प्रतीत होने लगता है। वह अव्यवधानरूपसे नित्य-निरन्तर मिलना ही पसन्द करता है और एक क्षण

भी भगवान्‌से अलग होना नहीं चाहता।

११६-अनन्य प्रेमीका ऊपरी व्यवहार चाहे जैसा हो, भीतरसे वह एकनिष्ठ है, भगवन्मय है, इसीलिये वह भगवान्‌में नित्य स्थित है।

११७-अहा! अपने प्यारेकी यादमें कितना मिठास है।

११८-प्रेमास्पद प्रेमीका जितना ही निरादर करता है उतना ही वह आनन्दित होता है। प्रेमीको चाहे कितनी खोटी-खरी सुनायी जाय, कितना ही वह तिरस्कृत हो किन्तु फिर भी प्रेमास्पदके प्रति उसके मनमें अधिकाधिक प्रेम ही बढ़ता रहता है।

११९-जिसको हम बिना हिचकिचाहटके उपालम्भ दे सकें, निस्संकोच कड़ी बातें सुना सकें, वही सच्चा प्रेमी है।

१२०-यदि प्रेमास्पद प्रेमीकी चीजको उसकी सम्मति लिये बिना ही किसीको दे देता है तो प्रेमीके चित्तमें आनन्द होता है।

१२१-प्रेमीको कठिन-से-कठिन काममें यदि प्रेमास्पद नियुक्त कर दे, यहाँतक कि उसकी सम्मतिके बिना उसका बलिदान भी कर दे तो भी प्रेमी प्रसन्न ही रहता है, उसके चित्तमें इतना उल्लास होता है कि मानो उसे साक्षात् ईश्वरके दर्शन ही हो गये।

१२२-जो एक बार प्रेमसे घायल हो जाता है, उसपर कोई भी औषध काम नहीं करती।

दया

१-उस कृपालुकी कृपा तो निरन्तर ही सबपर पूर्ण है। मनुष्य कृपा करनेवाला कौन है?

२-भगवान्‌की कृपाका निरन्तर अनुभव होते रहनेपर और अपनेको उनका कृपापात्र मान लेनेपर तो चिन्ता-फिकरका रहना सम्भव ही नहीं है। इसके बाद भी यदि चिन्ता रह जाय तो वह प्रभुको लज्जित करनेवाली है।

३-मनुष्यकी "नजर" किस काम आवेगी? नजर तो केवल भगवान्‌की

चाहिये और वह सबपर बहुत अच्छी है ही, परन्तु कोई इसपर ठीक-ठीक विश्वास करे तब तो!

४-पूर्वकालमें हजारों वर्षोंतक लगातार चेष्टा करनेपर भगवान्‌के दर्शन हुआ करते थे, परन्तु अब तो बहुत ही शीघ्र हो सकते हैं।

५-श्रीभगवान्‌की पूर्ण कृपा तो सदा ही है, इस समय विशेष कृपा है, साधनकी चेष्टा नहीं करनी बहुत मूर्खता है। अपनी तरफकी त्रुटि है।

६-सर्वत्र भगवान्‌की दया समझकर हर समय प्रसन्न रहना चाहिये। सांसारिक वस्तुओंके हानि-लाभमें भगवान्‌की लीला देखे, बहुत खुश हो और पद-पदपर भगवान्‌की दया देखे।

७-भगवान्‌की कृपा, दया हम सभीपर सदा ही पूर्ण बनी हुई है। इस बातको जो जान लेगा, वह भगवान्‌को कभी नहीं भूल सकेगा।

८-जैसे स्नेहमयी माता अपने प्यारे बच्चेको बुरे आचरणसे हटानेके लिये मारती है, इसी प्रकार भगवान् भी जीवोंके साथ दयापूर्ण कठोर बर्ताव करते हैं।

९-कलियुगमें थोड़ेहीमें भगवान् मिलते हैं। भगवद्-विषयक धन लुटा जा रहा है। लूट लेना चाहिये किंतु लोग बहुत जोर-शोरसे स्वार्थ और बुरे कामोंमें रत हैं। परमार्थमें समय कम बिताते हैं।

१०-भगवान्‌का बर्ताव देखकर चित्तमें गद्गद भाव तथा अश्रुपात होना चाहिये, जैसे विषका कीड़ा विषमें राजी रहता है, उसी प्रकार संसारके लोग संसारमें राजी रहते हैं, मैलेका कीड़ा मैलेमें प्रसन्न है, परंतु वास्तवमें उसका दुःख देखकर भी महात्मालोग उसको मैलेसे निकालकर मारना नहीं चाहते, उसी प्रकार संसारके लोग संसारमें राजी हैं तो उनको भगवान् बलपूर्वक कैसे निकालें।

११-श्रीपरमात्मदेवकी तो सबपर पूर्ण कृपा है। जिसको ऐसा निश्चय हो जाता है वही भगवान्‌का कृपापात्र है।

१२-फिर उसको शीघ्र ही भगवान् मिल जाते हैं, क्योंकि उससे बिना मिले उन्हें चैन नहीं पड़ता।

१३-भगवान्‌की तो पूर्णरूपसे कृपा है ही, परन्तु वह योग्य पात्रमें प्रत्यक्ष भासती है।

१४-जैसे सूर्यका प्रकाश सब जगह परिपूर्ण होनेपर भी दर्पणमें प्रत्यक्षवत् भासता है। भगवान्‌की कृपाका थोड़ा-सा प्रभाव जाननेपर साधक जो कुछ होता है सो भगवान्‌की कृपा ही समझता है और तब वह अपनी इच्छाको छोड़कर साक्षी होकर आनन्दमें मग्न रहता है।

१५-भगवत्कृपासे ही भगवत्-चर्चा होती है।

१६-भजन, ध्यान और सत्संगादि सभी कुछ भगवत्कृपासे होते हैं।

१७-निरन्तर ही भगवान्‌की पूर्ण कृपा मानते रहना चाहिये।

१८-भगवान्‌की कृपासे भगवान् मिलते हैं और जीवका उद्धार होता है। इन सब बातोंको खूब अच्छी तरह समझना चाहिये।

१९-दयासागर भगवान्‌की जीवोंपर इतनी अपार दया है कि जिसकी कोई सीमा ही नहीं।

२०-भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको दयाका सागर कहें, तब भी उनकी अपरिमित दयाका तिरस्कार ही होता है। जीवोंपर उनकी जो दया है, वह कल्पनातीत है।

२१-भगवान्‌को दयासागर कहना भी उनकी स्तुतिके व्याजसे निन्दा ही करना है। क्योंकि सागर तो सीमावाला है, परन्तु भगवान्‌की दयाकी तो कोई सीमा ही नहीं है।

२२-दयामय परमेश्वरकी सब जीवोंपर इतनी दया है कि सम्पूर्णरूपसे तो मनुष्य उसे समझ ही नहीं सकता, मनुष्य अपनी बुद्धिसे अपने ऊपर जितनी अधिक-से-अधिक दया समझता है, उतना समझना भी उसके लिये बहुत ही है, मनुष्य ईश्वर-कृपाकी यथार्थरूपसे तो कल्पना भी नहीं कर सकता।

२३-मनुष्य अपनी ऊँची-से-ऊँची कल्पनासे उनकी दयाका जहाँतक अनुमान लगाता है, भगवान्‌की दया उससे अनन्तगुना अधिक ही नहीं, असीम और अत्यन्त विलक्षण है। भगवान् वस्तुतः दयामय ही हैं। ''*है तुलसिहि परतीति एक प्रभु मूरति कृपामयी है।*''

२४-परमात्माकी प्राप्ति परमात्माकी दयासे ही होती है, दया ही एकमात्र कारण है। परन्तु यह दया मनुष्यको अकर्मण्य नहीं बना देती। परमात्माकी

दयासे ही ऐसा परम पुरुषार्थ बनता है। जीवका अपना कोई पुरुषार्थ नहीं, वह तो निमित्तमात्र होता है।

२५-दया और प्रेमका बड़ा भारी समुद्र उमड़ा हुआ है—भरा हुआ है। उसमें अपने-आपको डुबो दें। चारों तरफ बाहर-भीतर, नीचे-ऊपर सर्वत्र ईश्वरकी दया और प्रेमका समुद्र परिपूर्ण है।

२६-ईश्वर दयालु है, प्रेमी है। उनकी दया और प्रेम सब जगह परिपूर्ण हो रहे हैं। अणु-अणुमें उनकी दया और प्रेमको देख-देखकर हमें मुग्ध होना चाहिये। हर समय प्रसन्न रहना चाहिये। इसको साधन बना लेना चाहिये।

२७-जैसे सूर्यकी धूपमें हम बैठते हैं, हमारे चारों ओर धूप-ही-धूप पूर्ण है उसी तरह परमात्माकी दया और प्रेम सब जगह पूर्ण है।

२८-कोई स्थान उसकी दया और प्रेमसे खाली नहीं।

२९-'**सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।**' (गीता ५। २९) ईश्वर परम सुहृद् है। सुहृद्का अर्थ क्या है? दया और प्रेम जिसमें हो उसका नाम सुहृद् है। उसकी दया और प्रेम अनन्त है, अपार है। अणु-अणुमें, जर्रे-जर्रेमें व्याप्त हो रहे हैं।

३०-उस परम दयालु, सबके सुहृद्, सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी अपार दया हमलोगोंपर स्वाभाविक है। क्षण-क्षणमें उसकी दयाका स्वाभाविक लाभ हमको मिल रहा है, वे स्वयं अवतार लेकर अपनी दयाका प्रत्यक्ष दर्शन करा गये हैं, इसलिये उसकी ओर लक्ष्य करके भगवान्की दयाके रहस्य, प्रभाव और तत्त्वको समझनेके लिये हमें तत्पर हो जाना चाहिये।

३१-भगवान्की दयाका महत्त्व अपार है, उससे जो मनुष्य जितना लाभ उठाना चाहेगा, उतना ही उठा सकता है। भगवान्की दयाको एवं उसके रहस्य और तत्त्वको बिना समझे वह दया समानभावसे साधारण फल देती है। उसे जो जितना अधिक समझता है उसे वह उतना ही अधिक फल देती है और समझकर उसके अनुसार क्रिया करनेसे अत्यधिक फल देती है।

३२-जैसे सूर्यका प्रकाश समभावसे सर्वत्र होनेपर भी उज्ज्वल होनेके कारण काँच उसका विशेष पात्र है, क्योंकि वह सूर्यका प्रतिबिम्ब भी ग्रहण

कर लेता है और काँचोंमें भी सूर्यमुखी काँच तो सूर्यकी शक्तिको लेकर वस्त्रादि पदार्थोंको जला भी डालता है। इसी प्रकार सब जीवोंपर प्रभुकी दया समानभावसे रहते हुए भी जो मनुष्य उस दयाके तत्त्व और प्रभावको विशेषरूपसे जानते हैं। वे तो उस दयाके द्वारा समस्त पाप-तापोंको सहज ही भस्म कर डालते हैं।

३३-प्रभु असम्भवको भी सम्भव करनेवाले हैं, वे अपने दासोंके दोषोंकी ओर देखते ही नहीं। वे बिना ही कारण दासोंपर दया और प्रेम करते हैं। उनका स्वभाव ही ऐसा है।

३४-भगवान् हमलोगोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिये हमारे-जैसे बनकर हमारे इस भूमण्डलमें उतर आते हैं, इससे बढ़कर जीवोंपर भगवान्‌की और क्या कृपा होगी।

३५-भगवान् तो कृपाके आकर (खजाना) हैं। कृपा करना उनका स्वभाव ही है। कृपा किये बिना उनसे रहा नहीं जाता।

३६-उनकी दया, प्रेम सर्वत्र परिपूर्ण हो रहे हैं। वे दर्शन देनेको तैयार हैं। वे सब प्राणियोंके सुहृद् हैं।

३७-यह मनुष्य शरीर भगवान्‌की निहैतुकी दयासे प्राप्त हुआ है। इसीमें यह जीव भगवान्‌की दयाको समझकर उनका परम प्रेमपात्र बन सकता है।

३८-भगवान्‌की दयाका ऐसा प्रभाव है कि उसका रहस्य और तत्त्व जाननेवालेसे वह पारसमणिकी भाँति स्वयं क्रिया करवा लेती है।

३९-किसीके घरमें पारस पड़ा है, पर वह उसके गुण, प्रभाव और रहस्यको न जाननेके कारण दरिद्रताके दुःखको भोगता है, उसी प्रकार हमलोग भगवान् और भगवान्‌की दयाके रहस्य, प्रभाव, तत्त्व और गुणोंको न जाननेके कारण दुःखी हो रहे हैं।

४०-जो कुछ भी ईश्वरका विधान है उसमें हित ही भरा है। कहीं भी अहित दीखता है तो यह अपनी समझकी कमी है।

४१-अणु-अणुमें सब समय, सब देश और सब वस्तुमें अपना हित ही देखे, यह देखना ही सर्वत्र उसी दयाको देखना है। विश्वासपूर्वक मान लें

बस, फिर काम खतम।

४२-यदि हम दृढ़ विश्वास कर लें कि वे तो बड़े ही दयालु हैं, उनके न मिलनेमें हमारी बेसमझी ही कारण है। हमको मिलेगें, जरूर मिलेंगे, आज ही मिलेंगे—ऐसा दृढ़ निश्चय कर लें तो आज ही मिल जायेंगे इसमें तनिक भी शंका नहीं है।

४३-केवल मान लेना ही साधन है। जप या ध्यान कुछ भी करनेकी बात नहीं कही। केवल मान लो बस इतना ही करना है। वह परम सुहृद् हैं जिसमें अपार दया हो, हेतुरहित प्रेम हो। भगवान्‌की दया अपार है। वह अपार दयादृष्टिसे हमें देख रहा है फिर किस बातकी चिन्ता है।

४४-हर समय यह भाव जाग्रत् रहना चाहिये। अहा! ईश्वरकी हमपर कितनी दया है। ईश्वरका हमपर कितना प्रेम है। सबपर समानभावसे अपार दया है। जब इतनी दया है, तब हमको भय, चिन्ता, शोक करनेकी क्या आवश्यकता है। हम चिन्ता-भय करें यह तो हमारी मूर्खता है। भय किसका? न वहाँ भय है, न चिन्ता है, न मोह है। यह हमारी बेसमझी थी, हम जानते नहीं थे कि प्रभु इतने दयालु हैं। अब कहाँ चिन्ता? कहाँ भय? कहाँ शोक?

४५-ईश्वरकी दया सर्वत्र है। सर्वत्र उसके प्रेमकी छटा छा रही है। फिर हम क्यों भय करें। वह प्रेमका महान् समुद्र है, उसमें हम डूबे हुए हैं, प्रेम जलसे भींगे हुए हैं, मग्न हो रहे हैं। यह भाव जब दृढ़ हो जायेगा तब शान्ति और आनन्दकी बाढ़ प्रत्यक्ष दीखने लगेगी। फिर प्रेम आनन्दके रूपमें परिणत हो जायगा, वही परमात्माका स्वरूप है।

४६-एक बादशाहकी दया हो जाती है तो आनन्दका ठिकाना नहीं रहता। एक महात्माकी दया हो जाती है तो आनन्द समाता नहीं फिर ईश्वरकी दया तो अपार है। फिर क्या बात है।

४७-हम बेसमझीके कारण ही दुःखी हो रहे हैं। ईश्वरकी दया और प्रेम तो सब जगह पूर्ण हो ही रहे हैं। हम मानते नहीं तभी हम दुःखी होते हैं।

४८-भगवान्‌की दयाका प्रवाह अहर्निश गङ्गाके प्रवाहसे भी बढ़कर सर्वत्र बह रहा है तो भी मनुष्य उसका प्रभाव न जाननेके कारण एवं श्रद्धा

भक्तिकी कमी होनेके कारण भगवान्‌की शरण लेकर उनकी दयासे विशेष लाभ नहीं उठा सकते।

४९-भगवान्‌की दया तो सदा ही सबपर समानभावसे है, परन्तु जबतक उसकी अपार दयाको मनुष्य पहचान नहीं लेता, तबतक उसे दयासे लाभ नहीं होता।

५०-प्रभुकी दया सबके ऊपर ही अपार है, किन्तु हमलोग इस बातको अज्ञानके कारण समझते नहीं हैं, विषय-सुखमें भूले हुए हैं। इसलिये उस दयासे पूरा लाभ नहीं उठा सकते।

५१-बस केवल उसकी दयापर निर्भर होना चाहिये।

५२-भगवान्‌की दया और प्रेमका स्मरण कर हर समय भगवत्प्रेममें मुग्ध और निर्भय रहे। भगवच्चिन्तनमें खूब प्रेम और श्रद्धाकी वृद्धि करे। यह बड़ी ही मूल्यवान् है।

५३-यदि कहें कि किस बातको लेकर खुश रहें तो इसका उत्तर यह है कि भगवान्‌की दयाको देख-देखकर। देखो, भगवान्‌की तुमपर कितनी दया है। अपार दया समझकर इतना आनन्द होना चाहिये कि वह हृदयमें समावे नहीं। हर समय आनन्दमें मुग्ध रहे। बार-बार प्रसन्न होवे। अहा, प्रभुकी कितनी दया है। यही सबसे बढ़कर साधन है और यही भक्ति है एवं इसीका नाम शरण है।

५४-भगवान्‌की दया दोनों रूपोंसे सामने आती है। कहीं वह प्रेमके रूपमें दर्शन देती है, कहीं दण्डके रूपमें।

५५-जिस प्रकार बच्चेको प्यार करने और ताड़ना देने, दोनोंमें माताकी दया ही है, उसी प्रकार जीवोंके गुण-दोषोंका नियन्त्रण करनेवाले भगवान्‌की सब प्रकारसे उनपर कृपा ही है।

५६-उनकी प्रत्येक क्रियामें जगत्‌का हित भरा रहता है। भगवान् जिनको मारते या दण्ड देते हैं उनपर भी दया ही करते हैं, उनका कोई भी विधान दया और प्रेमसे रहित नहीं होता। इसलिये भगवान् सब भूतोंके सुहृद् हैं।

५७-सुख-दुःख जो भी प्राप्त हो, उसमें उसकी दया देखे। अपने द्वारा

की जानेवाली क्रियामें भी यह देखे कि भगवान्‌की "रुचि" क्या है जिसे भगवान्‌की दया और उनकी रुचिकी तरफ खयाल हो उस पुरुषको भगवान्‌के स्वरूपका खयाल तो दोनों ही तरहसे साथ-साथ होता ही रहता है।

५८-हानि-लाभ, जय-पराजय एवं सुख-दु:खादिमें समानरूपसे ईश्वरकी दयाका दर्शन करे।

५९-शरीरको समर्पित कर देनेपर तत्सम्बन्धी सुख-दु:खोंमें साधकको भगवान्‌की दया स्पष्टरूपसे दीखने लगती है।

६०-दयालु डाक्टर जैसे पके हुए फोड़ेमें चीरा देकर सड़ी हुई मवादको बाहर निकालकर उसे रोग-मुक्त कर देता है, इसी प्रकार भगवान् भक्तके हितार्थ कभी-कभी कष्टरूपी चीरा लगाकर उसे नीरोग बना देते हैं। इसमें उनकी दया ही भरी रहती है।

६१-माता स्नेहसे बच्चेको पकड़कर यदि फोड़ेको चिरवा रही है तो चिन्ता क्यों करनी चाहिये। मा देख रही है न, बच्चा यदि रोता है तो उसका बालकपन है। समझदार तो रोता भी नहीं। हमपर कोई भी दु:ख आवे तो समझना चाहिये—हमारी मा, भगवान् हमें सुखी करनेके लिये, पवित्र करनेके लिये गोदमें लेकर चिरवा रहे हैं।

६२-मारमें भी माका प्यार भरा रहता है, माताकी दयापर विश्वास करनेवाले बच्चेकी भाँति जो भगवान्‌के दया-तत्त्वको जान लेता है और भगवान्‌की मारपर भी भगवान्‌को ही पुकारता है, भगवान् उसे अपने हृदयसे लगा लेते हैं। फिर जो भगवान्‌की कृपाको विशेषरूपसे जान लेता है, उसकी तो बात ही क्या है?

६३-सारी माताओंके हृदयोंमें अपने पुत्रोंपर जो दया या स्नेह है, वह सब मिलकर भी उन दयासागरकी दयाके एक बूँदके बराबर भी नहीं है।

६४-श्रद्धा-भक्तिपूर्वक विचार करनेसे क्षण-क्षणमें, पद-पदपर, हर एक अवस्थामें मनुष्यको भगवान्‌की दयाके दर्शन होते रहते हैं। सब जीवोंको जल, वायु, प्रकाश आदि तत्त्वोंसे सुख-भोग मिल रहा है, उनके जीवनका निर्वाह हो रहा है, खान-पान आदि कार्य चल रहे हैं, इन सबमें ईश्वरकी

समान दया व्याप्त है।

६५-मनुष्यके शुभ और अशुभ कर्मोंके अनुसार फलभोगकी व्यवस्था कर देनेमें भगवान्‌की दयाका ही हाथ है।

६६-थोड़ा-सा जप, ध्यान और सत्संग करनेसे मनुष्यके जन्म-जन्मान्तरके पापोंका नाश होनेका जो भगवान्‌ने कानून बनाया है, इसमें तो भगवान्‌की अपार दया भरी हुई है।

६७-स्त्री, पुत्र, धन और मकान आदि सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्ति और उनका विनाश होनेमें, शरीरका स्वास्थ्य ठीक रहने और न रहनेमें, रोग और संकटादिकी प्राप्ति और उनके विनाशमें तथा सुख-सम्पत्ति और दुःखोंकी प्राप्तिमें भी हर एक अवस्थामें मनुष्यको भगवान्‌की दयाका दर्शन करनेका अभ्यास करना चाहिये।

६८-जो सांसारिक भोग-पदार्थोंके वियोगमें भी भगवान्‌की दयाका दर्शन करके सदा प्रसन्न रहता है, वही उनकी दयाके रहस्यको ठीक समझता है।

६९-सुखी और दुःखी, महात्मा और पापी जीवोंके साथ मिलन और बिछोह होनेके समय एवं उनसे किसी प्रकारका भी सम्बन्ध होते समय, सदा भगवान्‌की दयाका दर्शन करना चाहिये।

७०-दैवी सम्पदाकी प्राप्ति और आसुरी सम्पदाके नाशमें भगवान्‌की दया ही प्रधान हेतु है।

७१-भगवान्‌को हर समय याद रखना चाहिये। स्त्री-पुत्र आदिके प्राप्त होनेपर यह समझे कि भगवत्प्राप्तिमें सहायताके लिये ये मिले हैं और इनके नाश होनेपर यह समझे कि मैं इनकी आसक्तिमें फँस गया था इसलिये भगवान्‌ने दया करके इनको हटा लिया है। इसी प्रकार अन्य विषयोंकी प्राप्ति और विनाशमें भी समझना चाहिये।

७२-भजन, ध्यान, सेवा, सत्संग, सद्गुण और सदाचार आदिकी जो स्मृति, इच्छा और प्राप्ति होती है—यह भगवान्‌की विशेष दया है।

७३-हमारे ऊपर प्रभुकी अपार दया है। वे देखते रहते हैं कि जरा भी गुंजाइश हो तो मैं प्रकट होऊँ, थोड़ा भी मौका मिले तो भक्तको दर्शन दूँ।

७४-भगवान्‌की दयाके प्रभावको जाननेवाले पुरुषोंके संगसे मनुष्यको भगवान्‌की नित्य दयाका पता लगता है, दयाके ज्ञानसे भजनका मर्म समझमें आता है, फिर उसकी भजनमें प्रवृत्ति होती है और भजनके नित्य-निरन्तर अभ्याससे उसके समस्त संचित पाप समूल नष्ट हो जाते हैं और उसे परमात्माकी प्राप्तिरूप पूर्ण लाभ मिलता है।

७५-ज्यों-ही-ज्यों प्रभुकी दयाके तत्त्व और प्रभावको मनुष्य अधिक-से-अधिक जानता चला जाता है, त्यों-ही-त्यों उसके दुःख, दुर्गुण और पापोंका नाश होता चला जाता है और फलतः वह निर्भय और निश्चिन्त होकर परम शान्ति और परमानन्दको प्राप्त हो जाता है।

७६-दयासागर भगवान्‌की दयाके तत्त्व और रहस्यको यथार्थ जाननेवाला पुरुष भी दयाका समुद्र और सब भूतोंका सुहृद् बन जाता है।

७७-जो पुरुष भगवत्कृपाके रहस्यको समझ जाता है, उसमें दया, गम्भीरता, शान्ति और सरलता आदि सद्गुण स्वयं ही आ जाते हैं। उसके हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ने लगता है तथा दृष्टिमें सर्वत्र समताका साम्राज्य छा जाता है।

७८-जो परमेश्वर महापामर दीन-दुःखी अनाथको याचना करनेपर उसके दुर्गुण और दुराचारोंकी ओर खयाल न करके बच्चेको माताकी भाँति गले लगा लेता है, ऐसे उस परम दयालु सच्चे हितैषी परम पुरुषकी इस दयाके तत्त्वको जाननेवाला पुरुष उसकी प्राप्तिसे वञ्चित कैसे रह सकता है।

भक्ति

१-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थोंके मिलनेका सरल उपाय एक हरिकी सेवा ही है।

२-भक्ति ही एक ऐसा साधन है जिसे सभी सुगमतासे कर सकते हैं और जिसमें सभी मनुष्योंका अधिकार है।

३-इस कलिकालमें तो भक्तिके समान आत्मोद्धारके लिये दूसरा कोई

सुगम उपाय है ही नहीं, क्योंकि ज्ञान, योग, तप, यज्ञ आदि इस समय सिद्ध होने बहुत ही कठिन हैं।

४-अनिर्वचनीय ब्रह्मानन्दकी प्राप्तिके लिये भगवद्भक्तिके सदृश किसी भी युगमें अन्य कोई भी सुगम उपाय नहीं है। कलियुगमें तो है ही नहीं।

५-भगवद्भक्तिमें मनुष्यमात्रका समान अधिकार है। कोई किसी वर्णाश्रमका, किसी जातिका, किसी समाजका और किसी अवस्थाका क्यों न हो, भगवान्‌की भक्ति करनेमें उसके लिये कोई रुकावट नहीं है।

६-भक्तिमें न विद्याकी आवश्यकता है, न बुद्धिकी। मूर्ख-से-मूर्ख और पापी-से-पापी भी भगवान्‌की भक्ति करनेसे परम पवित्र होकर उनकी कृपा प्राप्त कर सकता है और उस कृपाके बलसे उसे बहुत जल्दी परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

७-ईश्वरकी भक्तिमें आयु और रूपका तो कुछ भी मूल्य नहीं है। विद्या, धन, जाति और बल—ये भी मुख्य नहीं हैं एवं सदाचार और सद्गुणकी तरफ भी भगवान् इतना खयाल नहीं करते, वे केवल प्रेमको ही देखते हैं।

८-वर्तमान समयके लिये कल्याणकी प्राप्तिका सबसे सुगम और उत्तम उपाय भक्तिसहित निष्काम कर्मयोग है। इसका बड़ा सुन्दर उपदेश श्रीगीताजीके अष्टादश अध्यायके ५६ से ६६ तक ११ श्लोकोंमें है।

९-भगवान्‌की भक्ति ही उनका तत्त्वज्ञान करानेमें सर्वोपरि साधन है। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक भगवद्भक्तिका ही अभ्यास करे।

१०-भगवान्‌के स्वरूपका यथार्थ ज्ञान तो उनकी भक्ति करनेसे ही होता है।

११-भक्तितत्त्वका समझना बड़ा कठिन है।

१२-भक्तिका परम तत्त्व भगवान्‌की शरण होनेसे ही जाना जा सकता है।

१३-परमात्मामें परम अनन्य विशुद्ध प्रेमका होना ही भक्ति कहलाता है।

१४-भक्तिके प्रधान दो भेद हैं। एक साधनरूप, जिसको वैध और नवधाके नामसे भी कहा है और दूसरा साध्यरूप, जिसको प्रेमा-प्रेमलक्षणा आदि नामोंसे कहा है। इनमें नवधा साधनरूप है और प्रेम साध्य है।

१५-स्वामी जिससे सन्तुष्ट हो उस प्रकारके भावसे भावित होकर उसकी आज्ञाके अनुसार आचरण करनेका नाम वैध भक्ति है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भागवत ७। ५। २३)

१६-भगवान् विष्णुके नाम, रूप, गुण, प्रभावादिका श्रवण, कीर्तन और स्मरण तथा भगवान्‌की चरणसेवा, पूजन और वन्दन एवं भगवान्‌में दासभाव, सखाभाव और अपनेको समर्पण कर देना—यह नव प्रकारकी भक्ति है।

१७-भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंद्वारा कथित भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व और रहस्यकी अमृतमयी कथाओंका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण करना एवं उन अमृतमयी कथाओंका श्रवण करके वीणाके सुननेसे जैसे हरिण मुग्ध हो जाता है, वैसे ही प्रेममें मुग्ध हो जाना श्रवणभक्तिका स्वरूप है।

१८-केवल श्रवणभक्तिसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

१९-धुन्धुकारी-जैसा पापी भी केवल भगवान्‌के गुणानुवादोंके सुननेके प्रभावसे तर गया।

२०-सत्संग ही श्रवणभक्तिका हेतु है।

२१-भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र और रहस्यका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उच्चारण करते-करते शरीरमें रोमाञ्च, कण्ठावरोध, अश्रुपात, हृदयकी प्रफुल्लता, मुग्धता आदिका होना कीर्तन-भक्तिका स्वरूप है।

२२-केवल कीर्तन-भक्तिसे भी मनुष्य परमात्माकी दयासे उसमें अनन्य प्रेम करके उसे प्राप्त कर सकता है।

२३-प्रभुके नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व और रहस्यकी अमृतमयी कथाओंका जो श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण तथा पठन किया गया है, उनका मनन करना एवं इस प्रकार मनन करते-करते देहकी सुधि भुलाकर भगवान्‌के स्वरूपमें ध्रुवकी भाँति तल्लीन हो जाना, स्मरणभक्तिका स्वरूप है।

२४-एकान्त एवं पवित्र स्थानमें सुखपूर्वक स्थिर, सरल आसनसे बैठकर इन्द्रियोंको विषयोंसे रहित करके कामना और संकल्पको त्यागकर प्रशान्त और वैराग्ययुक्त चित्तसे अथवा चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते, सभी काम करते हुए भी स्वाभाविक, शुद्ध और सरल-भावसे भगवान्‌के सगुण, निर्गुण, साकार, निराकारके तत्त्वको जानकर गुण और प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन करना, भगवान्‌के नामका मनसे स्मरण करना, भगवान्‌की लीलाओंको स्मरण करके मुग्ध होना, भगवान्‌के तत्त्व और रहस्यको जाननेके लिये उनके गुण, प्रभावका चिन्तन करना तथा दिव्य स्तोत्र और पदोंसे मनके द्वारा स्तुति और प्रार्थना करना, इस तरह स्मरणके बहुत-से प्रकार शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं।

२५-प्रेमी भक्तोंके द्वारा नाम, रूप, गुण, प्रभाव आदिकी अमृतमयी कथाओंका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण करना, भगवद्विषयक धार्मिक पुस्तकोंका पठन-पाठन करना, भगवान्‌के नामका जप और कीर्तन करना, भगवान्‌के पद एवं स्तोत्रोंके द्वारा अथवा किसी भी प्रकारसे ध्यानके लिये करुणाभावसे स्तुति-प्रार्थना करना तथा भगवान् और महापुरुषोंकी आज्ञाका पालन करना आदि उपर्युक्त स्मरणभक्तिको प्राप्त करनेके उपाय हैं।

२६-केवल स्मरणभक्तिसे भी सारे पाप, विघ्न, अवगुण और दुःखोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। भगवत्-स्मरणके द्वारा मनुष्य जो कुछ भी चाहे प्राप्त कर सकता है। भगवत्प्राप्तिरूप परमशान्तिकी प्राप्ति भी इससे अति शीघ्र एवं सुगमतासे हो जाती है।

२७-श्रुति-स्मृति, इतिहास-पुराण, संत-महात्मा सबने एक स्वरसे भगवत्-स्मरण (ध्यान) की बड़ी महिमा गायी है।

२८-भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजके चरणकमलोंकी स्मृति सब पापोंका नाश करती है तथा अन्तःकरणकी शुद्धि, परमात्मामें भक्ति, विज्ञान-वैराग्यसहित ज्ञान एवं शान्तिका विस्तार करती है।

२९-भगवत्-प्राप्तिकी इच्छावाले साधक पुरुषको उचित है कि सब कार्य करते हुए भी जैसे कछुआ अण्डोंका, गऊ बछड़ेका, कामी स्त्रीका, लोभी

धनका, नटी अपने चरणोंका, ड्राइवर सड़कका ध्यान रखता है, वैसे ही परमात्माका ध्यान रखे।

३०-बार-बार अतृप्त नयनोंसे भगवान्‌के चरणारविन्दका दर्शन करना, हाथोंसे भगवच्चरणोंका पूजन और सेवन करना तथा चरणोदक लेना, मनसे भगवच्चरणोंका चिन्तन, पूजन, सेवन करना, भगवान्‌की चरणपादुकाओंका हाथोंसे पूजन और मनसे चिन्तन, सेवन तथा पूजन करना, भगवान्‌की चरणरजको मनसे मस्तकपर धारण करना, हृदयसे लगाना, भगवान्‌के चरणोंसे स्पर्श किये हुए शय्यासन आदिको तीर्थसे बढ़कर उनका समादर करना; अयोध्या, चित्रकूट, वृन्दावन, मथुरा आदि स्थानोंको जहाँ-जहाँ भगवान्‌का अवतार या प्राकट्य हुआ है या जहाँ-जहाँ भगवान्‌के चरण टिके हैं, परम तीर्थ समझकर वहाँकी धूलिको भगवान्‌की चरणधूलि मानकर मस्तकपर धारण करना, जिस वस्तुको भगवान्‌का चरणस्पर्श प्राप्त हुआ है, उस वस्तुका हृदयसे आदर करना और उसे मस्तकपर धारण करना तथा श्रीगङ्गाजीके जलको भगवान्‌का चरणोदक समझकर प्रणाम, पूजन, स्नान-पानादिके द्वारा उसका सेवन करना आदि सभी "पादसेवन" भक्तिके ही विभिन्न प्रकार हैं।

३१-ममता, अहंकार और अभिमान आदिका नाश होकर प्रभुके चरणोंमें अनन्य प्रेमकी प्राप्ति होनेके उद्देश्यसे पाद-सेवन भक्ति की जाती है।

३२-भगवान्‌के अनन्य भक्तोंका संग करनेसे भगवान्‌की चरण-सेवाका तत्त्व-रहस्य और प्रभाव सुननेको मिलता है, उससे श्रद्धा होकर तब यह भक्ति प्राप्त होती है।

३३-केवल पादसेवन-भक्तिसे भी मनुष्यके सम्पूर्ण दुर्गुण-दुराचार और दु:ख सर्वथा नष्ट हो जाते हैं और भगवान्‌में सहज ही अतिशय श्रद्धा और प्रेम होकर उसे आत्यन्तिकी परमा शान्तिकी प्राप्ति होती है। उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता।

३४-भगवान् विश्वेश्वरका चरणकमलरूप जहाज ही एकमात्र सहारा है

३५-नित्य-निरन्तर प्रभुके चरणोंका दर्शन और सेवन करके पल-पलमें किस प्रकार आनन्दित होना चाहिये, इसका आदर्श श्रीसीताजी हैं।

३६-भगवान्‌के चरणोदकका पान करनेसे और उसे मस्तकपर धारण करनेसे भी कल्याण होता है।

३७-भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेनेसे मनुष्यके सब दोषोंका नाश हो जाता है, उसकी सारी विपत्तियाँ टल जाती हैं और वह गोपदके समान संसार-सागरसे तर जाता है।

३८-भगवान्‌के पवित्र चरणोंमें श्रद्धापूर्वक मन लगाकर उनका नित्य सेवन करना चाहिये।

३९-भगवान्‌के भक्तोंसे सुने हुए, शास्त्रोंमें पढ़े हुए, धातु आदिसे बनी मूर्ति या चित्रपटके रूपमें देखे हुए अपने मनको रुचनेवाले किसी भी भगवान्‌के स्वरूपका बाह्य सामग्रियोंसे, भगवान्‌के किसी भी अपनी अभिलषित स्वरूपकी मानसिक मूर्ति बनाकर मानसिक सामग्रियोंसे अथवा सम्पूर्ण भूतोंमें परमात्माको स्थित समझकर सबका आदर-सत्कार करते हुए यथायोग्य नानाविध उपचारोंसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका सेवन-पूजन करना और उनके तत्त्व, रहस्य तथा प्रभावको समझ-समझकर प्रेममें मुग्ध होना अर्चन-भक्ति है।

४०-पत्र, पुष्प, चन्दन आदि सात्त्विक, पवित्र और न्यायोपार्जित द्रव्योंसे भगवान्‌की प्रतिमाका श्रद्धापूर्वक पूजन करना, भगवान्‌की प्रीतिके लिये शास्त्रोक्त यज्ञादि करना, सबको भगवान्‌का स्वरूप समझकर अपने वर्णाश्रमके अनुसार उनकी यथायोग्य सेवा करना तथा सत्कार, मान, पूजा आदिसे सन्तुष्ट करना और दु:खी, अनाथ, अपंग, पीड़ित प्राणियोंमें—भूखोंकी अन्नसे, प्यासोंकी जलसे, वस्त्रहीनोंकी वस्त्रादिसे, रोगियोंकी औषधादिसे, अनाथोंकी आश्रयदानसे यथावश्यक, यथाशक्ति श्रद्धा और सत्कारपूर्वक सबको भगवत्स्वरूप समझकर भगवत्प्रीतिके लिये सेवा करना आदि सभी भगवान्‌की बाह्य पूजाके प्रकार हैं।

४१-अपने चित्तको अनायास ही आकर्षित करनेवाले भगवान्‌के किसी भी अलौकिक रूप-लावण्ययुक्त, अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमय परम तेजोमण्डित स्वरूपका प्रत्येक अवयव, वस्त्राभूषण, आयुधादिसे युक्त और हस्तपदादिके

मङ्गलचिह्नोंसहित मनके द्वारा चिन्तन करके अह्लादपूर्वक मनमें उसका आवाहन, स्थापन और नानाविध मानसिक सामग्रियोंके द्वारा अत्यन्त श्रद्धा और प्रेमके साथ पूजन करना मानस-पूजाका प्रकार है।

४२-जो लोग इस संसारमें श्रीभगवान्‌की अर्चा-पूजा करते हैं, वे श्रीभगवान्‌के अविनाशी आनन्दस्वरूप परमपदको प्राप्त होते हैं।

४३-भगवान्‌की पूजा करनेसे मनुष्य जो कुछ चाहता है, वही उसे मिल जाता है और सहज ही उसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

४४-भगवान्‌के प्रेममें विह्वल होकर श्रद्धापूर्वक अपनी-अपनी रुचि और भावनाके अनुसार भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये।

४५-भगवान्‌के शास्त्रवर्णित स्वरूप, भगवान्‌के नाम, भगवान्‌की धातु आदिकी मूर्ति, चित्र अथवा मानसिक मूर्तिको शरीर अथवा मनसे श्रद्धासहित साष्टाङ्ग प्रणम्म करना या समस्त चराचर भूतोंको परमात्माका स्वरूप समझकर श्रद्धापूर्वक शरीर या मनसे प्रणाम करना और ऐसा करते हुए भगवत्प्रेममें मुग्ध होना वन्दन-भक्ति है।

४६-भगवान्‌का अनन्यभक्त यावन्मात्र जगत्‌को भगवद्-भावसे प्रणाम करे।

४७-भगवान्‌के मन्दिरोंमें जाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्‌की मूर्तिको साष्टाङ्ग प्रणाम करना, अपने-अपने घरोंमें भगवान्‌की प्रतिमा या चित्रपटको, भगवान्‌के नामको, भगवान्‌के चरण और चरणपादुकाओंको, भगवान्‌के तत्त्व, रहस्य, प्रेम, प्रभाव और भगवान्‌की मधुर लीलाओंका जिनमें वर्णन हो, ऐसे सत्-शास्त्रोंको और सम्पूर्ण चराचर जीवोंको भगवान्‌का स्वरूप समझकर या उनके हृदयमें भगवान्‌को स्थित समझकर नियमपूर्वक श्रद्धाभक्तिसहित गद्गदभावसे प्रणाम करना वन्दन-भक्तिके प्रकार हैं।

४८-भगवान्‌में अनन्य प्रेम होकर भगवान्‌को प्राप्त करना इस भक्तिका उद्देश्य है।

४९-भगवान्‌के प्यारे प्रेमी भक्तोंका संग और सेवन करके उनके द्वारा भगवान्‌की वन्दन-भक्तिका रहस्य, प्रभाव और तत्त्व समझनेसे इस वन्दन-भक्तिकी प्राप्ति होती है।

५०-भगवान्‌के रहस्यको समझकर उन्हें प्रणाम करनेवाला सब दुःखोंसे छूट जाता है।

५१-श्रद्धापूर्वक भगवान्‌को प्रणाम करनेवालेकी तो बात ही क्या है, किसी भी अवस्थामें भगवान्‌को प्रणाम करनेसे भी सब पापोंका नाश हो जाता है।

५२-भगवान्‌के गुण, तत्त्व, रहस्य और प्रभावको जानकर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना और उनकी आज्ञाका पालन करना दास्य-भक्ति है।

५३-मन्दिरोंमें भगवान्‌के विग्रहोंकी सेवा करना, मन्दिर-मार्जनादि करना, मनसे प्रभुके स्वरूपका ध्यान करके उनकी सेवा करना, सम्पूर्ण चराचरको प्रभुका स्वरूप समझकर सबकी यथाशक्ति, यथायोग्य सेवा करना, गीता आदि शास्त्रोंको भगवान्‌की आज्ञा मानकर उसके अनुसार आचरण करना और जो कर्म भगवान्‌की रुचि, प्रसन्नता और इच्छाके अनुकूल हों उन्हीं कर्मोंको करना—ये सभी दास्य-भक्तिके प्रकार हैं।

५४-केवल दास्य-भक्तिसे भी मनुष्यको सहज ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

५५-भगवान्‌के रहस्यको जाननेवाले प्रेमी भक्तोंके संग और सेवनसे दास्य-भक्तिकी प्राप्ति होती है।

५६-भगवान्‌के प्रभाव, तत्त्व, रहस्य और महिमाको समझकर परम विश्वासपूर्वक मित्रभावसे उनकी रुचिके अनुसार बन जाना, उनमें अनन्य प्रेम करना और उनके गुण, रूप और लीलापर मुग्ध होकर नित्य-निरन्तर प्रसन्न रहना सख्य-भक्ति है।

५७-प्यारे प्रेमीको परम सुख हो, उसमें अपना सख्य-प्रेम पूर्णरूपसे बढ़ जाय और उससे अपना कभी वियोग न हो इसी उद्देश्यसे सख्य-भक्ति की जाती है।

५८-अपने आवश्यक-से-आवश्यक कामको छोड़कर प्यारे प्रेमीके कामको आदरपूर्वक करना, प्यारे प्रेमीके कामके सामने अपने कामको तुच्छ समझकर उससे लापरवाह हो जाना, प्यारे प्रेमीके लिये महान् परिश्रम करने-

पर भी उसे अल्प ही समझना, प्यारा जिस बातसे प्रसन्न होता हो उसी बातको लक्ष्यमें रखकर हर समय उसीके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करना, वह जो कुछ भी करे उसीमें सदा सन्तुष्ट रहना, अपनी कोई भी वस्तु किसी भी प्रकारसे प्रेमीके काम आ जाय तो परम प्रसन्न होना, अपने शरीरपर और अपनी वस्तुपर जैसी अपनी आत्मीयता और अधिकार है वैसा ही अपने प्यारे प्रेमीका समझे और इसी प्रकार उसकी वस्तु और शरीरपर अपना अधिकार और आत्मीयता माने, अपने धन, जीवन और देहादि प्यारे प्रेमीके काममें लग सकें तो उनको सफल समझना, उसके साथ रहनेकी निरन्तर इच्छा रखना, उसके दर्शन, भाषण, चिन्तन और स्पर्शसे प्रेममें निमग्न हो जाना, उसके नाम, रूप, गुण और चरित्रोंको सुनकर, कहकर, पढ़कर और यादकर अत्यन्त प्रसन्न होना, किसीके द्वारा मित्रका संदेश पाकर परम प्रसन्न होना और उसके वियोगमें व्याकुल होना तथा प्रतिक्षण उससे मिलनेकी आशा और प्रतीक्षा करते रहना आदि सखाभावके प्रकार हैं।

५९-सख्य-भक्तिकी प्राप्तिके लिये भगवान्के प्रेमी सखाओंका संग, सेवन, उनके जीवन-चरित्रोंका अध्ययन और उनके तथा भगवान्के गुण, लीला और प्रभावका उनके प्रेमी भक्तोंद्वारा श्रवण करना चाहिये।

६०-केवल सख्य-भक्तिसे भी मनुष्यके दुःख और दोषोंका अत्यन्त अभाव होकर भगवान्की प्राप्ति और भगवान्में परम प्रेम हो जाता है। यहाँतक कि भगवान् उस प्रेमी भक्तके अधीन हो जाते हैं और फिर उसके आनन्द और शान्तिका पार नहीं रहता।

६१-परमात्माके तत्त्व, रहस्य, प्रभाव और महिमाको समझकर, ममता और अहंकाररहित होकर अपने तन-मन-धन-जनसहित अपने-आपको और सम्पूर्ण कर्मोंको श्रद्धा और परम प्रेमपूर्वक परमात्माको समर्पण कर देना आत्मनिवेदन-भक्ति है।

६२-भगवान्के शरणागत प्रेमी भक्तोंका संग-सेवन करनेसे और उनके द्वारा भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, तत्त्व, महिमा आदिका श्रवण और मनन करनेसे आत्मनिवेदन-भक्ति प्राप्त होती है।

६३-लाभ-हानि, जय-पराजय, यश-अपयश, मान-अपमान, सुख-दु:ख आदिकी प्राप्तिमें, उन्हें भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार मानकर प्रसन्न रहना, तन-धन, स्त्री-पुत्र आदि सभीमें ममता और अहंकारका अभाव हो जाना, भगवान् यन्त्री हैं और मैं उनके हाथका यन्त्र हूँ ऐसा निश्चय करके कठपुतलीकी भाँति भगवान्‌के इच्छानुकूल ही सब कुछ करना, भगवान्‌के रहस्य और प्रभावको जाननेके लिये उनके नाम, रूप, गुण, लीलाके श्रवण, मनन, कथन, अध्ययन और चिन्तनादिमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक तन-मन आदिको लगा देना, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि सभीपर एकमात्र भगवान्‌का ही अधिकार समझना, भगवान्‌की ही वस्तु भगवान्‌के अर्पण की गयी है ऐसा भाव होना, जिस किसी भी प्रकारसे भगवान्‌की सेवा बनती रहे इसीमें आनन्द मानना, सब कुछ प्रभुके अर्पण करके स्वाद, शौक, विलास, आराम, भोग आदिकी इच्छाका सर्वथा अभाव हो जाना, सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा एक भगवान्‌का ही अनुभव करना, भगवान्‌की इच्छाके अतिरिक्त स्वतन्त्र कोई इच्छा न करना, भगवान्‌के भरोसेपर सदा निर्भय, निश्चिन्त और प्रसन्न रहना और भगवान्‌की भक्तिको छोड़कर मुक्तिकी भी इच्छा न होना आदि सभी इस आत्मनिवेदन-भक्तिके प्रकार हैं।

६४-जो पुरुष भगवान्‌के प्रति आत्मनिवेदन कर देता है उसके सम्पूर्ण अवगुण, पाप और दु:खोंका अत्यन्त नाश हो जाता है और उसमें श्रवण-कीर्तनादि सभी भक्तियोंका विकास हो जाता है। उसके आनन्द और शान्तिका पार नहीं रहता।

६५-भगवान् शरणागत भक्तसे कभी अलग नहीं हो सकते। भगवान्‌का सर्वस्व उसका हो जाता है। वह परम पवित्र हो जाता है, उसके दर्शन, भाषण और चिन्तनसे भी पापात्मालोग पवित्र हो जाते हैं। वह तीर्थोंके लिये तीर्थरूप बन जाता है।

६६-नवधा भक्तिका तत्त्व-रहस्य महापुरुषोंसे समझकर श्रद्धा और प्रेमपूर्वक तत्परताके साथ भक्तिका साधन करना चाहिये।

६७-बिना नवधा भक्तिका अभ्यास किये वह साधक प्रेमलक्षणा भक्तिका

सच्चा पात्र नहीं बन सकता।

६८-प्रेमलक्षणा भक्तिका रहस्य भगवत्प्राप्त पुरुष ही बतला सकते हैं।

६९-प्रेमलक्षणा भक्तिके जिज्ञासुओंको उन महापुरुषोंके संग और सेवा-द्वारा उसका तत्त्व और रहस्य समझकर उसका साधन करना चाहिये।

७०-भगवान्‌के रासका विषय तो अत्यन्त ही गहन है। भगवान् और भगवान्‌की क्रीड़ा दिव्य, अलौकिक, पवित्र, प्रेममय और मधुर है। जो माधुर्यरसके रहस्यको जानता है वही उससे लाभ उठा सकता है।

७१-मनको वशमें करके मनसे हरिका चिन्तन करना, शान्त स्वभावसे रहना, वनके फल-मूल आदिका थोड़ा आहार करना, भगवान्‌के चरित्रोंका हृदयमें ध्यान करते रहना और इन्द्रियोंको विषयभोगोंसे निवृत्त करके भक्तियोगद्वारा अनन्यभावसे भगवान् वासुदेवका भजन करना चाहिये।

७२-परमेश्वरकी सब प्रकारसे शरण होकर इन्द्रिय और शरीरसे उसकी सेवा करना, मनसे उसे स्मरण करना, श्वाससे उसका नामोच्चारण करना, कानोंसे उसका प्रभाव सुनना और शरीरसे उसके इच्छानुसार चलना—यही उसकी सेवा है, यही असली भक्ति है और इसीसे आत्माका शीघ्र कल्याण हो सकता है।

७३-ईश्वरकी स्मृति निरन्तर रहनी चाहिये।

७४-कोई कैसा ही पापी, कैसा ही मूर्ख क्यों न हो, भगवान्‌के स्मरणके अभ्याससे उसका एक क्षणमें उद्धार हो सकता है।

७५-प्यारे मनमोहनको कभी बिसारना नहीं चाहिये, हृदयसे सदा-सर्वदा उनका स्मरण करते रहना चाहिये। प्राण चाहे छूट जायँ पर प्राणप्यारेकी स्मृति एक क्षणके लिये भी हृदयसे न हटे। नेत्र उन्हींको देखें, कान उन्हींकी चर्चा सुनें, वाणीसे उन्हींके गुणोंका कीर्तन और नामका जप हो, शरीरके द्वारा उन्हींको प्रणाम किया जाय और हाथ उन्हींकी सेवा-पूजामें लगे रहें। अर्थात् शरीर एवं मनसहित सारी इन्द्रियाँ भगवान्‌में लग जायँ, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। यही सच्चा पौरुष है।

७६-मरणकालमें भी जिस-जिसका चिन्तन करता हुआ मनुष्य मरता है, आगे जाकर वह उसीको प्राप्त होता है अर्थात् जो भगवान्‌का चिन्तन करता हुआ जाता है, वह भगवान्‌को प्राप्त होता है और जो संसारका चिन्तन करता हुआ जाता है, वह संसारको प्राप्त होता है।

७७-भोग, आराम, पाप, आलस्य तथा प्रमाद आदिको मृत्युके समान समझकर अपने जीवनके क्षणोंका उपयोग उत्तम-से-उत्तम कार्योंमें ही करना चाहिये। भगवान्‌के नामका जप और गुण तथा प्रभावके सहित उनके स्वरूपका ध्यान करते हुए ही उनकी आज्ञाके अनुसार तत्परताके साथ काम करना चाहिये।

७८-जब भगवत्स्मृतिके रहते हुए युद्ध-जैसी क्रिया भी हो सकती है तो फिर हमलोगोंके साधारण कार्योंके होनेमें तो कठिनाई ही क्या है!

७९-काम करते समय भी हमें भजनका अभ्यास डालना चाहिये।

८०-नटनी बाँसपर चढ़ते समय ढोल भी बजाती रहती है और गायन भी करती रहती है, किन्तु इन सब क्रियाओंको करते हुए भी उसका ध्यान निरन्तर अपने पैरोंपर ही रहता है। इसी प्रकार गाने-बजानेकी भाँति हमें सब काम करने चाहिये और उसके पैरोंके ध्यानकी तरह हमें परमात्मामें अपना मन रखना चाहिये।

८१-जब हमलोग कोई भी काम करें, उस समय हमें श्वास या वाणीके द्वारा भगवान्‌के नामका जप तथा गुण-प्रभावके सहित उनके स्वरूपका ध्यान करते हुए ही काम करनेका अभ्यास डालना चाहिये।

८२-काम करते समय यह भाव रहना चाहिये कि यह काम भगवान्‌का है और उन्हींके आज्ञानुसार, उन्हींकी प्रसन्नताके लिये मैं कर रहा हूँ। प्रभु मेरे पास खड़े हुए मेरे कामको देख रहे हैं—ऐसा समझकर सदा प्रसन्न रहना चाहिये।

८३-भगवान्‌में चित्त लगाकर भगवान्‌के लिये ही कर्म करनेवालेको भगवान्‌की कृपासे भगवान् शीघ्र मिल जाते हैं, यह बात जगह-जगह गीतामें

भगवान्‌ने कही है (८।७, ११।५५, १२।६ से ८, १८।५६ से ५८, ६२)।

८४-चलते-फिरते, उठते-बैठते, काम-काज करते, सब समय भगवान्‌को याद रखनेका अभ्यास करना चाहिये। पहले आधे घंटेपर, फिर पन्द्रह मिनटके अन्तरसे, फिर दस मिनटपर, फिर पाँच मिनटपर, इस प्रकार करते-करते निरन्तर भगवत्स्मरण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

८५-परमात्माके चिन्तनका वियोग साधकसे क्षणमात्रके लिये भी सहा नहीं जाता "**तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलता**" (नारदभक्ति-सूत्र १९)।

८६-स्मृतिको तैलधाराकी तरह अखण्ड बनाये रखनेके लिये हमें चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते तथा प्रत्येक कार्य करते हुए भगवान्‌को अपने साथ समझना चाहिये।

८७-संसारमें तमोगुण अधिक छाया हुआ है। तमोगुणके कारण लोग भगवत्तत्त्वसे अनभिज्ञ रहकर एकान्तवासमें भजन-ध्यानके बहाने नींद, आलस्य और अकर्मण्यताके शिकार हो जाते हैं।

८८-कुछ लोग "अब तो हम निरन्तर एकान्तमें रहकर भजन-ध्यान ही किया करेंगे" कहकर कर्म छोड़ देते हैं, परन्तु थोड़े ही दिनोंमें उनका मन एकान्तसे हट जाता है। कुछ लोग सोनेमें समय बिताते हैं, कोई कहने लगते हैं, "क्या करें, ध्यानमें मन नहीं लगता।" फलतः कुछ तो निकम्मे हो जाते हैं और कुछ प्रमादवश इन्द्रियोंको आराम देनेवाले भोगोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

८९-सच्चे भजन-ध्यानमें लगनेवाले विरले ही निकलते हैं।

९०-एकान्तमें निवासकर भजन-ध्यान करना बुरा नहीं है। परन्तु यह साधारण बात नहीं है। इसके लिये बहुत अभ्यासकी आवश्यकता है और यह अभ्यास कर्म करते हुए ही क्रमशः बढ़ाया और गाढ़ किया जा सकता है।

९१-कर्ममें भक्तिका और भक्तिमें कर्मका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध प्रच्छन्न है।

९२-उपासनारहित कर्म जड होनेसे कदापि मुक्तिदायक नहीं होते और न उपासनारहित ज्ञान ही प्रशंसनीय है।

९३-समत्वरूप योगमें स्थित होकर फलका अधिकार ईश्वरके जिम्मे समझकर जो कर्म करता है वह भी प्रकारान्तरसे ईश्वर-स्मरणरूप भक्ति करता है।

९४-प्रीति और श्रद्धा होनेपर कर्म उसमें बाधक नहीं होते, बल्कि उसका प्रत्येक कर्म भगवत्-प्रीतिके लिये ही अनुष्ठित होकर शुद्ध भक्तिके रूपमें परिणत हो जाता है।

९५-मनमें सदा-सर्वदा यह निश्चय रखना चाहिये कि हम जो कुछ करते हैं उसे भगवान् ही करवाते हैं।

९६-गुरु जिस प्रकार बच्चेका हाथ पकड़कर उससे अक्षर लिखवाते हैं, उसी प्रकार परमात्मा हमें प्रेरित करके समस्त कार्योंका आचरण हमसे करवाते हैं।

९७-कठपुतली जिस प्रकार सूत्रधारके इशारेपर नाचती है उसी प्रकार हमें भगवान्के हाथमें अपनी बागडोर सम्हलाकर उनके इशारेपर काम करना चाहिये।

९८-भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करनेकी इच्छावाले प्रत्येक व्यक्तिको भगवान्की दयापर निर्भर रहना चाहिये, उसे देख-देखकर प्रसन्न रहना चाहिये। और उनकी प्रसन्नताके अनुसार ही कार्य करते रहना चाहिये एवं निरन्तर उनका स्मरण करते रहना चाहिये।

९९-भगवान्के किये हुए प्रत्येक विधानमें निरन्तर उनका स्मरण करता हुआ परम सन्तोष मानकर हर समय प्रसन्न रहे।

१००-ईश्वरकी दया, रुचि और उसके स्वरूपका स्मरण करके प्रसन्न होता रहे।

१०१-हमें अपने मस्तकपर प्रभुका हाथ समझकर सदा आनन्दित रहना चाहिये।

१०२-सबसे मुख्य बात है अनन्य मनसे युक्त होकर भगवान्को निरन्तर भजना।

१०३-भगवान्‌के लिये ही भगवान्‌को प्रेमपूर्वक निरन्तर भजना उन्हें अनन्य मनसे भजना है।

१०४-अनन्य भजनका स्वरूप भगवान्‌ने श्रीगीताजीके नवें अध्यायके १४वें श्लोकमें बतलाया है। भगवान्‌का अनन्य प्रेमपूर्वक नित्य-निरन्तर चिन्तन ही इसका मुख्य अंग है।

१०५-भगवान्‌का नाम-गुण-कीर्तन अनन्य चिन्तनमें विशेष सहायक है।

१०६-भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन अनन्य भक्तिसे हो सकता है।

१०७-यदि कोई भगवत्परायण होकर निष्काम प्रेमभावसे भगवान्‌की भक्ति करे तो उसे साक्षात् दर्शन देनेके लिये भगवान् निश्चय ही बाध्य हैं।

१०८-साक्षात् दर्शन तो अनन्यभक्तिके अतिरिक्त अन्य किसी उपायसे नहीं हो सकता। (गीता ११। ५४)

१०९-अनन्य शरणागत भक्तको भक्तिका तत्त्व परमेश्वर स्वयं समझा देते हैं।

११०-अनन्य भक्तियुक्त पुरुष स्वयं पवित्र होता है, इसमें तो कहना ही क्या है, परन्तु वह अपने भक्तिके भावोंसे जगत्‌को पवित्र कर सकता है।

१११-यदि सब समय भगवान्‌के नामका जप और हृदयमें उनका स्मरण करते हुए संसारके समस्त व्यवहार उसीके अर्थ किये जायँ तो परमात्मामें अनन्य भक्ति हो जाती है।

११२-यदि घरमें एक भी पुरुषको अनन्य भक्तिसे परमात्माका साक्षात्कार हो जाय तो उसका समस्त कुल पवित्र समझा जाता है।

११३-जो लोग किसी सांसारिक कामना—स्त्री, पुत्र, धन, कीर्ति, स्वर्गसुख आदिके लिये भगवान्‌को भजते हैं, वे अनन्यमनसे युक्त नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उनका मन तो भोगोंमें फँसा रहता है, भगवान्‌को तो वे उन भोगोंकी प्राप्तिका साधनमात्र समझते हैं।

११४-किसी प्रकारकी कामना नहीं रखनी चाहिये। प्रह्लादजी कहते हैं कि वरदानकी इच्छासे जो भक्ति करता है वह तो वणिक् है।

११५-भारी-से-भारी संकट पड़नेपर भी विशुद्ध प्रेम, भक्ति और भगवत्-साक्षात्कारके सिवा अन्य किसी भी सांसारिक वस्तुकी कामना,

याचना या इच्छा कभी नहीं करनी चाहिये।

११६-भक्तिके द्वारा सब कुछ हो सकता है। साकार भगवान् नेत्रोंसे देखे जाते हैं, सगुण-निराकार बुद्धिद्वारा समझे जाते हैं और निर्गुण-निराकार अनुभवसे प्राप्त किये जाते हैं। ज्ञानरूप नेत्रोंवाले ज्ञानीजन ही भगवान्‌को तत्त्वसे जान सकते हैं।

११७-जो रोगी वैद्य, औषध और पथ्यपर श्रद्धा करके कुपथ्यसे बचकर औषधका सेवन और पथ्यका पालन करता है वह आरोग्य हो जाता है। ऐसे ही जो मनुष्य शास्त्र और महापुरुषोंद्वारा बतलाये हुए दुर्गुण और दुराचाररूप कुपथ्यको त्यागकर श्रद्धापूर्वक ईश्वर-भक्तिरूप औषधका सेवन और सदाचार-सद्गुणरूपी पथ्यका पालन करता है, वह जन्म-मरणरूप महान् भवरोगसे मुक्त हो जाता है। लौकिक औषधका सेवन करनेवाला तो अदृष्ट प्रतिकूल होनेसे शायद आरोग्य नहीं भी होता, परन्तु इस औषध तथा पथ्यका सेवन करनेवाला तो निश्चय ही जन्म-मरणरूप दुःखोंसे मुक्त हो जाता है, क्योंकि इसमें अदृष्ट बाधक नहीं हो सकता।

११८-केवल भगवान्‌के नामका जप, उनके स्वरूपका पूजन और ध्यान करनेसे भी अति उत्तम गतिकी प्राप्ति हो सकती है।

११९-भक्ति करनेवालेको भगवान् स्वयं ज्ञान प्रदानकर उसके अज्ञानरूपी अन्धकारका सर्वथा नाश कर देते हैं।

१२०-भक्त जिस रूपसे उन्हें देखना चाहता है वह उसी रूपमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन देते हैं। भगवान्‌का साकार रूप धारण करना भगवान्‌के अधीन नहीं, पर प्रेमी भक्तोंके अधीन है।

१२१-मान-प्रतिष्ठाको त्यागकर श्रीअक्रूरजीकी तरह भगवान्‌के चरणकमलोंसे चिह्नित रजमें लोटनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

१२२-श्रीनरसी मेहताकी तरह लज्जा, मान, बड़ाई और भयको छोड़कर भगवान्‌के गुणगानमें मग्न होकर विचरनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

१२३-दयामय भगवान् केवल भावके भूखे हैं। भावरहितके लिये उनका द्वार सदा बंद है।

१२४-भगवान्‌में सच्चा प्रेम होने तथा भगवान्‌की मनोमोहिनी मूर्तिके प्रत्यक्ष दर्शन मिलनेमें विश्वास ही मूल कारण है।

१२५-मुक्ति अथवा भगवत्साक्षात्कार करनेके लिये निष्कामभावसे की हुई भगवान्‌की भक्तिसे बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। हमारा लक्ष्य यही रहे कि भगवान्‌में हमारा अनन्य प्रेम हो।

१२६-भगवान् कहते हैं जो मुझको जैसे भजते हैं उनको मैं भी वैसे ही भजता हूँ।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गीता ४। ११)

१२७-भगवान्‌के अनन्त गुणों और चरित्रोंका जरा-सा भी स्मरण-मनन महान् कल्याणकारी और परम पावन है।

१२८-मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नाम, रूप, गुण, लीला, प्रेम और प्रभावकी अमृतमयी कथाओंका श्रवण, पठन और मनन परम कल्याण करनेवाला है।

१२९-घरमें भगवान्‌की मूर्ति रखकर भक्तिभावसे उसकी पूजा, आरती, स्तुति एवं प्रार्थना करनेसे भी कल्याण हो जाता है।

१३०-यदि प्रत्येक घरमें एक-एक भगवान्‌की मूर्ति या चित्र रहे—मूर्ति या चित्र वही हो जो अपने मनको रुचता हो और नित्य नियमपूर्वक उसकी पूजा की जाय तो समय और मन दोनोंको ही परमात्मामें लगानेका अभ्यास अनायास हो सकता है।

१३१-घरमें नित्य भगवान्‌की पूजा होनेसे उसके लिये पूजाकी सामग्री जुटाने, पुष्पकी माला गूँथने आदिमें बहुत-सा समय एक तरहसे भगवत्-चिन्तनमें लग जाता है। बालकोंको भी इसमें बड़ा आनन्द मिलता है, वे भी इसको सीख जाते हैं। लड़कपनसे ही उनके हृदयमें भगवत्सम्बन्धी संस्कार जमने लगते हैं।

१३२-जो लोग कर सकें वे बाह्य पूजाके साथ ही अपने-अपने सिद्धान्तके अनुसार या श्रीप्रेमभक्तिप्रकाशके अनुसार भगवान्‌की मानसिक

पूजा भी करें, क्योंकि आन्तरिक पूजाका महत्त्व और भी अधिक है।

१३३-जिस साधककी परमात्माके जिस रूपमें अधिक प्रीति और श्रद्धा हो, वह निरन्तर उसीका चिन्तन किया करे। परिणाम सबका एक ही है, परिणामके सम्बन्धमें किंचित् भी संशय रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

१३४-उपासना या भक्तिमार्ग बड़ा ही सुगम और महत्त्वपूर्ण है। इसमें ईश्वरका सहारा रहता है और उसका बल प्राप्त होता रहता है।

१३५-मन्दिरमें जाकर भगवान्के स्वरूप और गुणोंका स्मरण करना चाहिये और भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये, जिससे उनके मधुर स्वरूपका चिन्तन सदा बना रहे और उनकी आदर्श लीला तथा आज्ञाके अनुसार आचरण होता रहे।

१३६-सात्त्विक आचरण और भगवान्की विशुद्ध भक्तिसे अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर जिस समय भ्रम मिट जाता है उस समय साधक कृतकृत्य हो जाता है। यही परमात्माकी प्राप्ति है।

१३७-जिस प्रकार सूर्यकी सन्निधिमें रहनेवालेके पास शीत और अन्धकार नहीं फटक सकते, उसी प्रकार जिसके हृदयमें श्रीभगवान् विराजमान हैं उसके पास दुर्गुण नहीं आ सकते।

१३८-प्रेम सादृश्यता और समानतामें होता है, इसीसे जिस भक्तमें दैवी सम्पत्तिके गुण होते हैं वही भगवान्के दर्शनका उपयुक्त पात्र समझा जाता है।

१३९-भक्तिके लिये भगवान्ने पहली शर्त यह बतलायी है कि भक्तिके साधन करनेवालोंको दैवी सम्पत्तिका आश्रय लेना चाहिये।

१४०-भक्तिप्रिय माधव तो केवल भक्तिसे ही सन्तुष्ट होते हैं, गुणोंसे नहीं।

१४१-सदाचार और सद्गुण तो भक्तमें भक्तिके प्रभावसे अनायास ही आ जाते हैं, इसलिये ईश्वरकी भक्तिमें सदाचार और सद्गुणोंकी भी इतनी प्रधानता नहीं है।

१४२-जैसे बीमार आदमीके लिये रोगकी निवृत्तिमें औषधका सेवन प्रधान है और साथ-ही-साथ पथ्यकी भी आवश्यकता रहती है, इसी प्रकार

जन्म-मरणरूपी भवरोगकी निवृत्तिके लिये ईश्वरकी भक्ति परमौषध है और सद्गुण तथा सदाचारका सेवन पथ्य है।

१४३-सदाचार और सद्गुणरूपी पथ्यकी कमी रहनेपर भी भक्तिरूपी औषधके सेवनसे भवरोगकी निवृत्ति हो जाती है, क्योंकि भक्तिरूपी औषध पथ्यका काम भी कर लेती है।

१४४-केवल बाह्य आडम्बरका नाम भक्ति नहीं है।

१४५-भक्ति कहनेमें जितनी सहज है, करनेमें उतनी ही कठिन है।

१४६-भक्ति दिखानेकी चीज नहीं, वह तो हृदयका परम गुप्त धन है।

१४७-भक्तिका स्वरूप जितना गुप्त रहता है उतना ही वह अधिक मूल्यवान् समझा जाता है।

१४८-बनावटी देवी-देवताओंकी रचना धूर्तोंने की है। उनकी मान्यता छोड़कर शास्त्रीय देवी-देवताओंकी उपासना करनी चाहिये।

१४९-गीताका ऐसा कोई भी अध्याय नहीं है, जिसमें कहीं-न-कहीं भक्तिका प्रसंग न आया हो।

१५०-एक दृष्टिसे यह भी कहा जा सकता है कि गीता एक भक्तिप्रधान ग्रन्थ है, इसमें ऐसा कोई अध्याय नहीं जिसमें भक्तिका कुछ प्रसंग न हो।

१५१-गीताकी भक्ति अविवेकपूर्वक की हुई अन्धभक्ति या अज्ञानप्रेरित आलस्यमय कर्मत्यागरूप जडता नहीं है, गीताकी भक्ति क्रियात्मक और विवेकपूर्ण है।

१५२-गीताकी भक्तिमें पापको स्थान नहीं है।

१५३-गीताकी भक्ति पूर्णपुरुष परमात्माकी पूर्णताके समीप पहुँचे हुए साधकद्वारा की जाती है।

१५४-गीताके अनुसार प्रधानतः अनन्यभावसे भगवान्‌के स्वरूपमें स्थित होकर भगवान्‌की आज्ञा मानकर भगवान्‌के लिये मन, वाणी, शरीरसे स्ववर्णानुसार समस्त कर्मोंका आचरण करना ही भगवान्‌की भक्ति है और इसीसे परम सिद्धिरूप मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है।

१५५-गीताका प्रारम्भ और पर्यवसान भक्तिमें ही है।

१५६-जैसे वृक्षकी पूर्णता और गौरव फल आनेपर ही है, इसी प्रकार भक्तिकी पूर्णता और गौरव भगवान्‌में परम प्रेम होनेमें ही है। प्रेम ही उसकी पराकाष्ठा है और प्रेमके ही लिये सेवा की जाती है। इसलिये वास्तवमें भगवान्‌में अनन्य प्रेमका होना ही भक्ति है।

१५७-मनुष्यको कटिबद्ध होकर केवल ईश्वरकी भक्तिका ही साधन करनेके लिये तत्पर होना चाहिये।

१५८-भक्तको चाहिये वह अपने इष्टदेवकी उपासना करता हुआ सदा यह समझता रहे कि मैं जिस परमात्माकी उपासना करता हूँ वही परमेश्वर निराकाररूपसे चराचरमें व्यापक है, सर्वज्ञ है, सब कुछ उसीकी दृष्टिमें हो रहा है। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वगुणसम्पन्न, सर्वसमर्थ, सर्वसाक्षी, सत्-चित्-आनन्दघन मेरा इष्टदेव परमात्मा ही अपनी लीलासे भक्तोंके उद्धारके लिये उनके इच्छानुसार भिन्न-भिन्न स्वरूप धारणकर अनेक लीला करता है। इस प्रकार तत्त्वसे जाननेवाले पुरुषके लिये परमात्मा कभी अदृश्य नहीं होते और न वह कभी परमात्मासे अदृश्य होता है।

१५९-भगवान्‌का जो भक्त सबके रूपमें अखिल जगत्‌के परम पूज्य, देवाधिदेव, सर्वशक्तिमान्, परम गौरव तथा अचिन्त्य प्रभावके नित्य धाम अपने परम प्रियतम भगवान्‌को पहचानकर अपनी विशुद्ध सेवावृत्तिको हृदयके सच्चे विश्वास और अविरल प्रेमकी निरन्तर उन्हींकी ओर बहनेवाली पवित्र और सुधामयी मधुर धारामें पूर्णतया डुबा-डुबाकर उनकी पूजा करता है, तब उसे कितना और कैसा अलौकिक आनन्द तथा कितनी और कैसी अपूर्व दिव्य शान्ति मिलती होगी, इस बातको कोई नहीं बतला सकता।

१६०-श्रद्धा और प्रेमके साथ महापुरुषोंका संग, सत्-शास्त्रोंका श्रवण, मनन और भगवान्‌की शरण होकर अत्यन्त उत्सुकताके साथ उनसे प्रार्थना करनेपर उनकी दयासे मनुष्य भगवान्‌के इन प्रभाव और गुणोंको समझकर

उनका अनन्य भक्त हो सकता है।

१६१-अतिशय समता, शान्ति, दया, प्रेम, क्षमा, माधुर्य, वात्सल्य, गम्भीरता, उदारता, सुहृदता आदि भगवान्‌के गुण हैं।

१६२-सम्पूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्य, तेज, शक्ति, सामर्थ्य और असम्भवको भी सम्भव कर देना आदि भगवान्‌का प्रभाव है।

१६३-जैसे परमाणु, भाप, बादल, बूँदें और ओले आदि सब जल ही हैं, वैसे ही सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार, व्यक्त, अव्यक्त, जड, चेतन, स्थावर, जंगम, सत्, असत् आदि जो कुछ भी है तथा जो इससे भी परे है वह सब भगवान् ही है। यह भगवान्‌का तत्त्व है।

१६४-भगवान्‌के दर्शन, भाषण, स्पर्श, चिन्तन, कीर्तन, अर्चन, वन्दन, स्तवन आदिसे पापी भी परम पवित्र हो जाता है, यह विश्वास करना तथा सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वत्र समभावसे स्थित मनुष्यादि शरीरोंमें प्रकट होनेवाले और अवतार लेनेवाले परमात्माको पहचानना यह रहस्य है।

१६५-भगवान्‌के गुणोंकी महिमा कैसे गायी जाय! वे सभी गुणोंके समुद्र हैं। प्रभु प्रेममय हैं। प्रेमकी मूर्ति हैं। प्रेम ही उनका स्वभाव है। प्रभु दयामय हैं, दयाकी मूर्ति हैं, दया ही उनका स्वभाव है। उनके एक-एक गुणकी ओर ध्यान जाता है तो ऐसा दीखता है कि मानो वे उस गुणकी मूर्ति ही हैं। सारे गुण प्रभुमें अतिशय हैं। इसी प्रकार उनका प्रभाव भी अमित है।

१६६-संसारमें जो कुछ भी किसीका प्रभाव देखनेमें आता है वह सब प्रभुका ही है। अग्निमें जो दाहिका शक्ति है, सूर्यमें जो प्रकाश है, चन्द्रमामें जो शीतलता तथा पोषणशक्ति है वह सभी यदि इकट्ठी कर लें तो प्रभुके प्रभावके एक अंशके समान भी शायद ही हो।

१६७-जिसके संकल्प करनेसे तथा नेत्रोंके खोलने और मूँदनेसे क्षणमें संसारकी उत्पत्ति और विनाश हो जाता है, जिसके प्रभावसे क्षणमें मच्छरके तुल्य जीव भी इन्द्रके समान और इन्द्रके तुल्य जीव मच्छरके समान हो जाते हैं, इतना ही क्यों वह असम्भवको सम्भव और सम्भवको भी असम्भव कर

सकता है। ऐसी कोई भी बात नहीं है, जो उसके प्रभावसे न हो सके। ऐसा प्रभावशाली होनेपर भी वह भजनेवालेकी कभी उपेक्षा नहीं करता, बल्कि भजनेवालेको स्वयं भी वैसे ही भजता है, इस रहस्यको किंचित् भी जाननेवाला पुरुष एक क्षणके लिये भी ऐसे प्रभुका वियोग कैसे सह सकता है।

१६८-जो प्रेमका तत्त्व जानता है, साक्षात् प्रेमस्वरूप है, जो महान् होकर भी अपने प्रेमी भक्त और सखाओंके साथ उनका अनुगमन करता है, ऐसे उस निरभिमानी, प्रेमी, दयालु भगवान्‌के तत्त्वको जाननेवाला पुरुष उसकी किसी भी आज्ञाका उल्लंघन कैसे कर सकता है।

१६९-उस परमात्मामें धैर्य, क्षमा, दया, त्याग, शान्ति, प्रेम, ज्ञान, समता, निर्भयता, वत्सलता, सरलता, कोमलता, मधुरता, सुहृदता आदि गुणोंका पार नहीं है और परमात्माके ये सब गुण उसको भजनेवालेमें स्वाभाविक ही आ जाते हैं। इस बातके मर्मको जाननेवाला पुरुष उसको छोड़कर एक क्षण भी दूसरेको नहीं भज सकता।

१७०-भला, भगवान्‌के तत्त्व, रहस्य, प्रभाव और गुणोंको जाननेवाला भगवान्‌का भक्त भजन-ध्यानादि बहुमूल्य रत्नोंको छोड़कर संसारके विषयरूप कंकड़-पत्थरोंमें अपना एक क्षण भी क्यों नष्ट करेगा?

१७१-जिनका भगवान्‌में प्रेम और श्रद्धा है, वे भगवान्‌की प्रत्येक लीलामय क्रियाओंसे शिक्षा ग्रहण किया करते हैं और प्रेममें मुग्ध हुआ करते हैं।

१७२-भगवान्‌के लीलामय कर्मोंसे शिक्षा ग्रहण करके जो उनका अनुकरण करते हैं, वे भी कर्मोंसे लिपायमान न होकर परमेश्वरको प्राप्त हो जाते हैं और उनके कर्म भी दिव्य हो जाते हैं।

१७३-जो पुरुष भगवान्‌के जन्मकी दिव्यताको तत्त्वसे समझ लेता है, उसके लिये भगवान्‌का एक क्षणका भी वियोग असह्य हो जाता है। भगवान्‌में परम श्रद्धा और अनन्य प्रेम होनेके कारण उसके द्वारा भगवान्‌का अनन्यचिन्तन होता रहता है।

१७४-उस परमेश्वरके समान सुहृद्, प्रेमी और पतितपावन दूसरा कोई नहीं है, यों समझकर जो पुरुष उनका अनन्य प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ आसक्तिरहित होकर संसारमें बर्तता है, वही वास्तवमें उनको तत्त्वसे जानता है। ऐसे तत्त्वज्ञ पुरुषको इस दुःखरूप संसारमें फिर कभी लौटकर नहीं आना पड़ता।

१७५-संसारमें श्रीनारायणकी भक्तिको बड़े जोरसे बढ़ाना चाहिये। समय बीता जा रहा है। भक्तिका प्रवाह प्रबल हुए बिना कैसे काम चलेगा?

१७६-मनुष्य धीरे-धीरे संसारके सब विषयोंसे प्रेम करना छोड़कर एकमात्र आनन्दस्वरूप भगवान्‌की भक्तिमें लग जाय तो बेड़ा पार हो सकता है।

१७७-भक्तिसे ज्ञान-वैराग्य आप ही हो सकते हैं। क्योंकि भक्ति माता है और ज्ञान-वैराग्य दोनों भक्तिके पुत्र हैं। अतः भक्तिमें ही सुख है।

१७८-भक्तिसे भगवान् मिलते हैं जिससे सदाके लिये पूर्ण आनन्द हो जाता है।

१७९-नवीन नवधा भक्ति

१. (सत्संग) भगवद्भक्तोंके दर्शन, चिन्तन, स्पर्शसे तथा उनके वचन सुननेसे अति हर्षित होना।
२. (कीर्तन) प्रेममें मग्न होकर हर समय भगवन्नामका स्मरण तथा प्रेम और प्रभावके सहित भगवान्‌के गुणोंका कथन।
३. (स्मरण) सारे संसारमें भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन।
४. (शुभेच्छा) भगवान्‌के दर्शनकी और उनमें प्रेम होनेकी उत्कट इच्छा।
५. (संतोष) जो कुछ आकर प्राप्त हो उसको भगवत्-आज्ञासे हुआ मानकर आनन्दसे पतिव्रता स्त्रीकी भाँति स्वीकार करना।
६. (सेवा) सब जीवोंको परमेश्वरका स्वरूप समझकर निष्काम-भावसे उनकी सेवा और सत्कार करना।
७. (निष्काम कर्म) शास्त्रोक्त निष्कामभावसे सब कर्मोंमें ईश्वरके अनुकूल बर्तना अर्थात् जिससे परमेश्वर प्रसन्न होवें वही कर्म करना।

८. (उपरामता) संसारके भोगोंसे चित्तको हटाना।

९. (सदाचार) ईश्वरमें प्रेम होनेके लिये अहिंसा सत्यादिका पालन करना।

१८०-धन, यौवन अस्थिर हैं, केवल भगवत्-प्रेम और भक्ति ही स्थिर हैं—उन्हें प्राप्त करना चाहिये।

१८१-कभी निराश न होना चाहिये और परमात्माकी निष्काम प्रेमाभक्तिमें मग्न रहना चाहिये।

१८२-नीच पुरुष भी भगवान्‌की भक्ति करनेसे उत्तम ही समझा जाने योग्य है। जैसे—अजामिल।

ज्ञानयोग

१-सारे संसारको एक सत्-चित्-आनन्दके द्वारा व्याप्त परिपूर्ण समझना चाहिये, जैसे बर्फका ढेला जलसे व्याप्त है इसी प्रकार आनन्दघनसे सारा संसार व्याप्त है। इस प्रकार समझता रहे तो फिर संसारका चाहे जितना संग हो, कोई हानि नहीं।

२-चलते समय सब जगह परमात्माको देखना चाहिये। इस प्रकार साधन करनेसे बहुत लाभ होता है। नेत्रोंसे जो चीज देखनेमें आती है वह चीज है नहीं, न वह पदार्थ ही है न शरीर ही है, वास्तवमें एक परमात्मा ही परिपूर्ण है। जो दीखता है सो है नहीं, जैसे स्वप्नका संसार और मृगतृष्णाका जल और तिरमिरा, वास्तवमें यह दृष्टान्त भी घटता नहीं। एक बोध-आनन्दघन ही है, आनन्द है, बोध है, ज्ञानस्वरूप है इस माफिक करनेसे पहले तो आनन्दकी लहर उठती हुई भान होती है, पीछे और साधन बढ़नेसे एक ज्ञानस्वरूप ही रह जाता है।

३-एक सच्चिदानन्द सर्वव्यापक परमात्माके होनेपनेका भाव और उसके बिना और सबका अभाव देखनेसे तथा संसारको मिथ्या, स्वप्नवत् कल्पित देखनेका अभ्यास करनेसे भी संसारकी सत्ता और शरीरमें अहंभावका अभाव हो सकता है।

४-ध्यान जिसका किया जाता है सो अमृतरूप है। उस समय ध्यान ही साक्षात् अमृतमय हो जाता है तथा केवल अर्थमात्र ही रह जाता है और ध्याता, ध्यान, ध्येयरूप त्रिपुटी है ऐसा कहना नहीं बनता; अमृतका ज्ञान, अमृतस्वरूप परमात्माको ही है, फिर अमृतमयकी इच्छा किसको हो!

५-संसारके कामोंको मिथ्या जानकर प्रसन्न चित्तसे हँसते हुए और भगवान्को याद रखते हुए खेलकी तरह करना चाहिये या सच्चिदानन्द भगवान्के सर्वव्यापी स्वरूपमें स्थित होकर शरीरसे अलग द्रष्टा बने हुए सांसारिक कामोंको करना चाहिये।

६-भजन, ध्यान, सेवा, सत्संग आदिसे पवित्र अन्तःकरण होनेके साथ-ही-साथ उपर्युक्त प्रकारके ज्ञानरूपी सूर्यका प्रकाश मनुष्यके हृदयाकाशमें चमकने लगता है।

७-हर समय शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमेंसे "मैं" को हटानेकी चेष्टा करते रहना चाहिये। बराबर खयाल रखना चाहिये कि शरीरादि मैं नहीं हूँ, मैं इनसे पृथक् हूँ, मैं इनका द्रष्टा हूँ।

८-श्रीसच्चिदानन्दघन परमात्मा ही तेरा स्वरूप है, उसीमें "मैं" भाव करना चाहिये।

९-व्यवहार-कालमें तथा बोलनेके समय भी शरीर में "मैं" भाव नहीं होने देना चाहिये।

१०-यह मिथ्या संसार बहुत समयके अभ्याससे सत्य प्रतीत होता है। वास्तवमें संसार कोई भी वस्तु नहीं है। सब जगह केवल एक सच्चिदानन्द ही परिपूर्ण है ऐसा विश्वास होना चाहिये।

११-परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषका वास्तवमें अन्तःकरणसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। केवल लोकदृष्टिमें उसके अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा सब कार्य होते हुए प्रतीत होते हैं।

१२-जिन पुरुषोंकी अज्ञाननिद्रा नष्ट हो गयी है या संसारका स्वप्नाशके सदृश अभाव हो गया है उनके अन्तरमें काम-क्रोधादि दुर्गुण कैसे रह सकते हैं? जिस पुरुषकी नींद टूट जाती है उसका स्वप्नसे कोई सम्बन्ध रहता है?

१३-सारे संसारको एक आनन्दघनमें कल्पित समझकर सबको आनन्दसे परिपूर्ण समझना चाहिये। जिस प्रकार जलमें स्थित बर्फका पिण्ड केवल जलसे पूर्ण है, उसी प्रकार सबको आनन्दघन परमात्मामें और परमात्मासे परिपूर्ण समझना चाहिये।

१४-शरीरसे पृथक् रहकर और शरीरके कर्मोंका साक्षी बनकर जो कर्म करता है, उसके हृदयमें विकार नहीं हो सकता।

१५-जीव जो परमात्माका सनातन अंश है, अपनी शक्तिको भूल रहा है, इसीलिये उसको माया प्रबल प्रतीत होती है। यदि अपनी शक्ति जाग्रत् कर ली जाय तो मायाकी शक्ति सहजहीमें परास्त हो जाय। मायामें अज्ञान हेतु है और अज्ञानके नाशसे ही मायाका नाश है।

१६-जो मनुष्य स्वामीके कामको झंझट समझकर उससे जी चुराता है वह अकर्मण्य समझा जाता है। जो लीलामात्र कामको सच्चा समझता है, स्वामी उसे मूर्ख मानता है और जो कामको वास्तवमें ही स्वप्नवत् (लीलामात्र) समझता है, मालिक उसीको अपना ज्ञानी भक्त समझता है।

१७-सच्चिदानन्दघन परमात्मासे भिन्न जो कुछ भी भासता है, वह है नहीं। इस प्रकार समझकर, जो कुछ भी चिन्तनमें आता है उसका खयाल छोड़कर जो बच रहे उसको अचिन्त्य सच्चिदानन्द समझकर उसीमें स्थित होना चाहिये। इस प्रकार अधिक अभ्यास करनेपर अचिन्त्यके ध्यानकी स्थिति हो सकती है।

१८-जलमें बर्फकी तरह अपने शरीरको आनन्दमें डुबोकर शरीरको ढहा दे। फिर आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है। इस प्रकार ध्यान करनेसे सच्चिदानन्दके स्वरूपमें स्थिति हो सकती है।

१९-परम आनन्दमय एक सच्चिदानन्दघन ही सर्वत्र अभिन्नरूपसे है, वही परमपद है, वही परब्रह्म है और वही अमृत है।

२०-संसारमें दो ही पदार्थ हैं—जड और चेतन। पुरुष चेतन है, प्रकृति जड है। पुरुष द्रष्टा है, प्रकृति दृश्य है। पुरुष निर्विकार है, प्रकृति

विकारशीला है।

२१-ज्ञानमार्गपर चलनेवाला पुरुष समस्त चराचर विश्वको अपने चिन्मय आत्मरूपसे ही अनुभव करता है।

२२-ज्ञानयोगका साधन देहाभिमानसे रहित होकर करना चाहिये।

२३-अद्वैत-सिद्धान्तके अनुसार ''आत्मा'' और ''परमात्मा'' में कोई वास्तविक भेद नहीं है, केवल नामका ही भेद है।

२४-आत्मा सुखस्वरूप है।

२५-वह विज्ञानानन्दघन परमात्मा नित्य है, शाश्वत है, सनातन है, अव्यय है। उसी एकसे सब सत्ता, सब स्फूर्ति है। सारी चेतना और स्फुरणा उसीकी है। वही नित्य-सत्यस्वरूप है।

२६-संसारकी सत्ताके मूलमें परमात्माका निवास है। यह सारी दमकती हुई चेतनता परमात्माकी स्फूर्ति है। यह सब परमात्माका स्वरूप है। सबके नाश होनेपर भी उसका नाश नहीं होता। वह सर्वदा, सर्वत्र प्रत्यक्ष विद्यमान है।

२७-देह नाशवान् है पर देही (आत्मा) अविनाशी है। देह असत् है, देही सत् है। देहके सभी पदार्थ अनित्य और क्षणभंगुर हैं। संसारमें जो कुछ भी सत्ता-स्फूर्ति हम देख रहे हैं वह सब परमात्माकी ही है।

२८-हमारा यह शरीर असत् है, क्षणभंगुर है, नाशवान् है, आदि और अन्तवाला है। जो असत् है उसका भाव नहीं होता, जो सत् है उसका कभी अभाव नहीं होता।

२९-जो सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें अभेदरूपसे स्थिति है, यानी ब्रह्ममें स्थित रहकर प्रकृतिद्वारा होनेवाले समस्त कर्मोंको प्रकृतिका विस्तार और मायामात्र मानकर वास्तवमें एक सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, यों निश्चय करके जो अभेद-स्थिति होती है उसे सांख्यनिष्ठा कहते हैं।

३०-सम्पूर्ण पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी भाँति अथवा स्वप्नकी सृष्टिके सदृश मायामय होनेसे मायाके कार्यरूप सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बरतते हैं—इस प्रकार समझकर मन-इन्द्रिय और शरीरके द्वारा होनेवाले समस्त कर्मोंमें कर्तापनके

अभिमानसे रहित होना (५। ८-९) तथा सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे नित्य स्थित रहते हुए एक सच्चिदानन्दघन वासुदेवके सिवा अन्य किसीके भी अस्तित्वका भाव न रहना (१३। ३०) यह तो "सांख्यनिष्ठा" है। "ज्ञानयोग" अथवा "कर्मसंन्यास" भी इसीके नाम हैं।

३१-ज्ञानयोगके अवान्तर भेद कई होते हुए भी उन्हें मुख्य चार विभागोंमें बाँटा जा सकता है—

१. जो कुछ है, वह ब्रह्म ही है।

२. जो कुछ दृश्य वर्ग प्रतीत होता है वह मायामय है, वास्तवमें एक सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

३. जो कुछ प्रतीत होता है, वह सब मेरा ही स्वरूप है—मैं ही हूँ।

४. जो कुछ प्रतीत होता है, वह मायामय है, अनित्य है, वास्तवमें है ही नहीं, केवल एक चेतन आत्मा मैं ही हूँ।

इनमेंसे पहले दो साधन "तत्त्वमसि" महावाक्यके "तत्" पदकी दृष्टिसे हैं और पिछले दो साधन "त्वम्" पदकी दृष्टिसे हैं। इन्हींका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१. इस चराचर जगत्में जो कुछ प्रतीत होता है, सब ब्रह्म ही है, एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। जो कुछ कर्म हम करते हैं वह कर्म, उस कर्मके साधन एवं उपकरण तथा स्वयं कर्ता—सब कुछ ब्रह्म है (४। २४)। जिस प्रकार समुद्रमें पड़े हुए बरफके ढेलोंके बाहर और भीतर सब जगह जल-ही-जल व्याप्त है तथा वे ढेले स्वयं भी जलरूप ही हैं, उसी प्रकार समस्त चराचर भूतोंके बाहर-भीतर एकमात्र परमात्मा ही परिपूर्ण हैं तथा उन समस्त भूतोंके रूपमें भी वे ही हैं (१३। १५)।

२. जो कुछ यह दृश्यवर्ग है, उसे मायामय, क्षणिक एवं नाशवान् समझकर—उसका अभाव करके केवल एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही है और कुछ भी नहीं है—ऐसा समझते हुए मन-

बुद्धिको भी ब्रह्ममें तद्रूप कर देना एवं परमात्मामें एकीभावसे स्थित होकर उनके अपरोक्षज्ञानद्वारा उनमें एकता प्राप्त कर लेना (४। २५ का उत्तरार्द्ध ५। १७)।

३. चर, अचर सब ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं हूँ, इसलिये सब मेरा ही स्वरूप है—इस प्रकार विचार कर सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंको अपना आत्मा ही समझना यानी समस्त भूतोंमें अपने आत्माको देखना और आत्माके अन्तर्गत समस्त भूतोंको देखना (६। २९)। इस प्रकार साधन करनेवालेकी दृष्टिमें एक ब्रह्मके सिवा अन्य कुछ भी नहीं रहता, वह फिर अपने उस विज्ञानानन्दघन स्वरूपमें ही आनन्दका अनुभव करता है (१८। ५४)।

४. जो कुछ भी वह मायामय, तीनों गुणोंका कार्यरूप दृश्यवर्ग है इसको और इसके द्वारा होनेवाली सारी क्रियाओंको अपनेसे पृथक्, नाशवान् एवं अनित्य समझना तथा इन सबका अत्यन्त अभाव करके केवल भावरूप आत्माका ही अनुभव करना (१३। ३०)।

उपर्युक्त ज्ञानयोगके चारों साधनोंमें पहले दो साधन तो ब्रह्मकी उपासनासे युक्त हैं एवं तीसरा और चौथा साधन अहंग्रह-उपासनासे युक्त हैं।

३२-सांख्ययोगी मायासे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं ऐसे समझकर मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर केवल सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें अनन्यभावसे निरन्तर स्थित रहता है (गीता ३। २८; ५। ८-९, १३; ६। ३१; १३। २९-३०; १४। १९-२०; १८। १७, ४९—५५)।

३३-सच्चिदानन्द परमात्मामें अभेदरूपसे स्थित होकर व्यवहारकालमें तो सम्पूर्ण दृश्यवर्गको ''गुण ही गुणोंमें बर्त रहे हैं'' अर्थात् इन्द्रियाँ अपने अर्थोंमें बर्त रही हैं—ऐसा मानकर उन सारे पदार्थोंको मृगतृष्णाके जल या स्वप्नके सदृश अनित्य समझना चाहिये।

३४-यह निश्चय करो कि यह संसार स्वप्न है। चाहे वह सत्य ही क्यों

न दिखायी दे उसे स्वप्नवत् माने रहो। मानते-मानते एक दिन स्वप्नका नाश हो जायेगा और सत्य वस्तु प्राप्त हो जायेगी।

३५-सबको प्राण ही सबसे बढ़कर प्यारे हैं। प्राणके समान प्यारा कुछ भी नहीं है, प्रिय-से-प्रिय वस्तु तो याद रहेगी ही। इसलिये प्राणोंमें ब्रह्मकी भावना करे। प्राण ही ब्रह्म है ऐसा निश्चय करनेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

३६-सब पदार्थोंमें समबुद्धि कर ले। उनमेंसे भेदभाव उठा दे। किसी भी वस्तुमें भेद न रखे। जैसे शरीरमें अपनापन है, भेद नहीं, अंगोंमें अन्तर नहीं, इसी तरह एक-दूसरेसे भेद न रखे। सबमें समता कर ले, भेद-बुद्धि उठा दे। इस भेदबुद्धिके उठानेसे भी कल्याण हो जायगा।

३७-केवल नित्यप्राप्त ब्रह्ममें जो अप्राप्तिका भ्रम हो रहा है उस भ्रमको मिटा देना ही कर्तव्य है।

३८-गीताका संन्यास संन्यास-आश्रम नहीं है, परन्तु सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर एक सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ऐक्यभावसे नित्य स्थित रहना ही है और इसलिये उसका उपयोग सभी वर्ण और आश्रमोंमें किया जा सकता है। इसीका नाम ज्ञानयोग है। इसीको सांख्ययोग कहते हैं और यही गीतोक्त संन्यास है।

३९-सम्यक् ज्ञानपूर्वक संन्यास-आश्रमसे सुगमताके साथ मुक्ति होती है इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु मेरी समझमें उस मुक्तिमें संन्यास-आश्रम हेतु नहीं, उसमें हेतु है सम्यक् ज्ञान जो सभी वर्ण और आश्रमोंमें उपलब्ध हो सकता है (गीता ६। १-२)।

४०-वैराग्य-उपरामतारहित ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं, वह केवल वाचिक और शास्त्रीय ज्ञान है जिसका फल मुक्ति नहीं प्रत्युत और भी कठिन बन्धन है।

४१-वाचिक ज्ञानी निर्भय होकर विषय-भोगोंमें प्रवृत्त हो जाता है, वह पापको भी पाप नहीं समझता, इसीसे वह विषयरूपी दलदलमें फँसकर पतित हो जाता है।

४२-जबतक अन्तःकरण मलिन है तबतक देहाभिमान है और देहाभिमानीसे ज्ञानयोगका साधन बनना अत्यन्त दुष्कर है।

कर्मयोग

१-निष्काम कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे उद्धार कर देता है।

२-निष्कामभावसे किया हुआ अल्पकर्म भी मुक्तिका हेतु बन सकता है।

३-निष्कामभावसे किया हुआ आचरण अमृतस्वरूप माना गया है।

४-भगवद्गीता योगनिष्ठाको भगवत्प्राप्ति यानी मोक्षका स्वतन्त्र साधन भी मानती है और ज्ञाननिष्ठामें सहायक भी।

५-गीतामें सकामभावकी अपेक्षा निष्कामभावको बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है और भगवान्‌की प्राप्तिके लिये उसे आवश्यक बतलाया है।

६-फल और आसक्तिको त्यागकर भगवान्‌के आज्ञानुसार केवल भगवदर्थ समत्व बुद्धिसे शास्त्रविहित कर्तव्य कर्मोंका करना ही निष्काम कर्मयोगका स्वरूप है।

७-सब कुछ भगवान्‌का समझकर, सिद्धि-असिद्धिमें समभाव रखते हुए, आसक्ति और फलकी इच्छाका त्याग करके भगवत्-आज्ञानुसार सब कर्मोंका आचरण करना (२। ४७ से ५१) अथवा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीरसे सब प्रकार भगवान्‌के शरण होकर नाम, गुण और प्रभावसहित उनके स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना (६। ४७)। यह "योगनिष्ठा" है। इसीका भगवान्‌ने समत्वयोग, बुद्धियोग, तदर्थकर्म, मदर्थकर्म एवं सात्त्विक त्याग आदि नामोंसे उल्लेख किया है।

८-योगनिष्ठाके भी तीन मुख्य भेद हैं—

१. केवल कर्मयोग।

२. भक्तिमिश्रित कर्मयोग।

३. भक्तिप्रधान कर्मयोग।

(१) केवल कर्मयोगके उपदेशमें कहीं-कहीं भगवान्ने केवल फलके त्यागकी बात कही है (५। १२; ६। १; १२। ११; १८। ११)। कहीं केवल आसक्तिके त्यागकी बात कही है (३। १९; ६। ४) और कहीं फल और आसक्ति दोनोंके छोड़नेकी बात कही गयी है (२। ४७, ४८; १८। ६,९)। जहाँ केवल फलके त्यागकी बात कही गयी है, वहाँ आसक्तिके त्यागकी बात ऊपरसे ले लेनी चाहिये और जहाँ केवल आसक्तिके त्यागकी बात कही है, वहाँ फलके त्यागकी बात ऊपरसे ले लेनी चाहिये। कर्मयोगका साधन वास्तवमें तभी पूर्ण होता है जब फल और आसक्ति दोनोंका ही त्याग होता है।

(२) भक्तिमिश्रित कर्मयोग—इसमें सारे संसारमें परमेश्वरको व्याप्त समझते हुए अपने-अपने वर्णोचित कर्मके द्वारा भगवान्की पूजा करनेकी बात कही गयी है (१८। ४६), इसीलिये इसको भक्तिमिश्रित कर्मयोग कह सकते हैं।

(३) भक्तिप्रधान कर्मयोग—

इसके दो अवान्तर भेद हैं—

(क) ''भगवदर्पण'' कर्म।

(ख) ''भगवदर्थ'' कर्म।

भगवदर्पण कर्म भी दो तरहसे किया जाता है। पूर्ण **''भगवदर्पण''** तो वह है जिसमें समस्त कर्मोंमें ममता, आसक्ति और फलेच्छाको त्यागकर तथा यह सब कुछ भगवान्का है, मैं भी भगवान्का हूँ और मेरेद्वारा जो कर्म होते हैं वे भी भगवान्के ही हैं, भगवान् ही मुझसे कठपुतलीकी भाँति सब कुछ करवा रहे हैं—ऐसा समझते हुए भगवान्की आज्ञानुसार भगवान्की ही प्रसन्नताके लिये शास्त्र-विहित कर्म किये जाते हैं (३। ३०; १२। ६; १८। ५७, ६६)।

इसके अतिरिक्त पहले किसी दूसरे उद्देश्यसे किये हुए कर्मोंको पीछेसे भगवान्के अर्पण कर देना, कर्म करते-करते बीचमें ही भगवान्के अर्पण कर देना, कर्म समाप्त होनेके साथ-साथ भगवान्के अर्पण कर देना अथवा

कर्मोंका फलमात्र भगवान्‌के अर्पण कर देना—यह भी '**भगवदर्पण**' का ही प्रकार है, यद्यपि यह भगवदर्पणकी प्रारम्भिक सीढ़ी है। ऐसा करते-करते ही उपर्युक्त पूर्ण भगवदर्पण होता है।

"भगवदर्थ" कर्म भी दो प्रकारके होते हैं—

भगवान्‌के विग्रह आदिका अर्चन तथा भजन-ध्यान आदि उपासनारूप कर्म जो भगवान्‌के ही निमित्त किये जाते हैं और जो स्वरूपसे भी भगवत्सम्बन्धी होते हैं, उनको "**भगवदर्थ**" कर्म कह सकते हैं।

इनके अतिरिक्त जो शास्त्रविहित कर्म भगवत्प्राप्ति, भगवत्प्रेम अथवा भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये भगवत्-आज्ञानुसार किये जाते हैं वे भी "भगवदर्थ" कर्मके ही अन्तर्गत हैं। इन दोनों प्रकारके कर्मोंका "**मत्कर्म**" और "**मदर्थ कर्म**" नामसे भी गीतामें उल्लेख हुआ है (११। ५५; १२। १०)।

जिसे अनन्य भक्ति अथवा भक्तियोग कहा गया है (८। १४, २२, ९। १३, १४, २२, ३०, ३४; १०। ९; १३। १०; १४। २६), वह भी "**भगवदर्पण**" और "**भगवदर्थ**" इन दोनों कर्मोंमें ही सम्मिलित है। इन सबका फल एक भगवत्प्राप्ति ही है।

(१) निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग—

चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अभक्ष्यभोजन और प्रमाद आदि शास्त्रविरुद्ध नीच कर्मोंको मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी न करना। यह पहली श्रेणीका त्याग है।

(२) काम्य कर्मोंका त्याग—

स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके एवं रोग-संकटादिकी निवृत्तिके उद्देश्यसे किये जानेवाले यज्ञ, दान, तप और उपासना आदि सकाम कर्मोंको अपने स्वार्थके लिये न करना। यह दूसरी श्रेणीका त्याग है।

(३) तृष्णाका सर्वथा त्याग—

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा एवं स्त्री, पुत्र और धनादि जो कुछ भी अनित्य पदार्थ प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए हों उनके बढ़नेकी इच्छाको भगवत्प्राप्तिमें बाधक समझकर उसका त्याग करना। यह तीसरी श्रेणीका त्याग है।

(४) स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेका त्याग—

अपने सुखके लिये किसीसे भी धनादि पदार्थोंकी अथवा सेवा करानेकी याचना करना एवं बिना याचनाके दिये हुए पदार्थोंको या की हुई सेवाको स्वीकार करना तथा किसी प्रकार भी किसीसे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकी मनमें इच्छा रखना—इत्यादि जो स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेके भाव हैं, उन सबका त्याग करना। यह चौथी श्रेणीका त्याग है।

(५) सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंमें आलस्य और फलकी इच्छाका सर्वथा त्याग—

ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, माता-पितादि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविकाद्वारा गृहस्थका निर्वाह एवं शरीर-सम्बन्धी खान-पान आदि जितने कर्तव्यकर्म हैं, उन सबमें आलस्यका और सब प्रकारकी कामनाका त्याग करना।

(६) संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिका सर्वथा त्याग—

धन, मकान और वस्त्रादि सम्पूर्ण वस्तुएँ तथा स्त्री, पुत्र और मित्रादि सम्पूर्ण बान्धवजन एवं मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा इत्यादि इस लोकके और परलोकके जितने विषय-भोगरूप पदार्थ हैं, उन सबको क्षणभंगुर और नाशवान् होनेके कारण अनित्य समझकर उनमें ममता और आसक्तिका न रहना तथा केवल एक परमात्मामें ही अनन्यभावसे विशुद्ध प्रेम होनेके कारण मन, वाणी और शरीरके द्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओंमें और शरीरमें भी ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाना। यह छठी श्रेणीका त्याग है।

उक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषोंका संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें वैराग्य होकर केवल एक परम प्रेममय भगवान्‌में ही अनन्य प्रेम हो जाता है। इसलिये उनको भगवान्‌के गुण, प्रभाव और रहस्यसे भरी हुई विशुद्ध प्रेमके विषयकी कथाओंका सुनना-सुनाना और मनन करना तथा एकान्त देशमें रहकर निरन्तर भगवान्‌का भजन, ध्यान और शास्त्रोंके मर्मका विचार करना ही प्रिय लगता है। विषयासक्त मनुष्योंमें रहकर हास्य, विलास, प्रमाद, निन्दा, विषयभोग और व्यर्थ वार्तादिमें अपने अमूल्य समयका एक

क्षण भी बिताना अच्छा नहीं लगता एवं उनके द्वारा सम्पूर्ण कर्तव्यकर्म भगवान्‌के स्वरूप और नामका मनन रहते हुए ही बिना आसक्तिके केवल भगवदर्थ होते हैं।

कर्मयोगका साधन करते-करते ही साधक परमात्माकी कृपासे परमात्माके स्वरूपको तत्त्वतः जानकर अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है (१८।५६)।

किन्तु यदि कोई सांख्ययोगके द्वारा परमात्माको प्राप्त करना चाहे तो उसे उपर्युक्त साधन करनेके अनन्तर निम्नलिखित सातवीं श्रेणीकी प्रणालीके अनुसार सांख्ययोगका साधन करना चाहिये।

(७) संसार, शरीर और सम्पूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासना और अहंभावका सर्वथा त्याग—

संसारके सम्पूर्ण पदार्थ मायाके कार्य होनेसे सर्वथा अनित्य हैं और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र समभावसे परिपूर्ण हैं—ऐसा दृढ़ निश्चय होकर शरीरसहित संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और सम्पूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासनाका सर्वथा अभाव हो जाना अर्थात् अन्तःकरणमें उनके चित्रोंका संस्काररूपसे भी न रहना एवं शरीरमें अहंभावका सर्वथा अभाव होकर मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका लेशमात्र भी न रहना तथा इस प्रकार शरीरसहित सम्पूर्ण पदार्थों और कर्मोंमें वासना और अहंभावका अत्यन्त अभाव होकर एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें ही एकीभावसे नित्य-निन्तर दृढ़ स्थिति रहना। यह सातवीं श्रेणीका त्याग है।

इस प्रकार साधन करनेसे वह पुरुष तत्काल ही सच्चिदानन्दघन परमात्माको सुखपूर्वक प्राप्त हो जाता है (६।२८)। किंतु जो पुरुष उक्त प्रकारसे कर्मयोगका साधन न करके आरम्भसे ही सांख्ययोगका साधन करता है। वह परमात्माको कठिनतासे प्राप्त होता है।

९-निष्काम कर्मयोगी साधनकालमें कर्म, कर्मफल, परमात्मा और अपनेको भिन्न-भिन्न मानता हुआ कर्मोंके फल और आसक्तिको त्यागकर ईश्वर-परायण हो ईश्वरार्पणबुद्धिसे ही सब कर्म करता है (गीता ३।३०; ४। २०; ५।१०; ९।२७-२८; १२।११-१२; १८।५६-५७)।

१०-कर्मयोगका विशेषत्व इसीलिये बतलाया है कि वह सुगम है और उसका साधन देहाभिमानी भी कर सकता है, परन्तु सांख्ययोग इसकी अपेक्षा बड़ा कठिन है (गीता अध्याय ५। ६)।

११-निष्काम कर्मयोगीकी परमात्माको प्राप्त करनेकी कामना परिणाममें परम कल्याणका हेतु होनेके कारण कामना नहीं समझी जाती, भगवत्प्राप्तिकी कामनावाला पुरुष निष्काम ही समझा जाता है।

१२-निष्काम कर्मयोगीकी दृष्टिमें संसारके समस्त पदार्थ उस परमात्माके सामने अत्यन्त तुच्छ, मलिन और छुद्र प्रतीत होते हैं, वह उस महान्-से-महान् परमात्माकी प्राप्तिरूप शुभेच्छामें जगत्के सम्पूर्ण बड़े-से-बड़े पदार्थोंको तुच्छ समझता है (गीता २। ४९)।

१३-परमात्माकी प्राप्तिके अनुकूल तो वे ही कार्य हो सकते हैं जिनके लिये भगवान्ने आज्ञा दी है, जो शास्त्रविहित हैं, जो किसीके लिये किसी प्रकारसे भी अनिष्टकारक नहीं होते। ऐसे कर्मोंमें निषिद्ध कर्मोंका समावेश किसी प्रकार भी नहीं हो सकता।

१४-गीताका निष्काम कर्मयोग सर्वथा भक्तिमिश्रित है।

१५-निष्काम कर्मका आचरण ही तभीसे आरम्भ होता है जबसे साधक अपने मनमें परमात्माको पानेकी शुभ और दृढ़ भावनाको लेकर संसारके भोगोंकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें हर्ष-शोकका विचार छोड़कर फलासक्तिका त्याग कर देना चाहता है।

१६-जो कर्म भगवान्की प्रीति या प्राप्तिके लिये नहीं होते उनका तो नाम ही कर्मयोग नहीं होता। कर्मयोग नाम तभी सफल होता है जब कर्मोंका योग परमात्माके साथ कर दिया जाता है।

१७-इसमें सन्देह नहीं कि कर्मयोगके साथ स्मरण-कीर्तनादि भक्तिका संयोग कर देनेपर भगवत्प्राप्ति बहुत शीघ्र होती है और सम्पूर्ण कर्मयोगियोंमें ऐसे ही योगी पुरुष उत्तम समझे जाते हैं (गीता ६। ४७)।

१८-मदर्पण कर्मका स्वरूप तो यह है कि जैसे एक आदमी किसी दूसरे उद्देश्यसे कुछ धन संग्रह कर रहा है और उसके पास पहलेसे कुछ धन

संगृहीत भी है, परन्तु वह जब चाहे तब अपने धन-संग्रहका उद्देश्य बदल सकता है और संगृहीत धन किसीको भी अर्पण कर सकता है। कर्मका आरम्भ करनेके बाद बीचमें या कर्मके पूरे होनेपर भी उसका अर्पण हो सकता है।

१९-मदर्थ या भगवदर्थ कर्म तो आरम्भसे ही भगवान्‌के लिये ही किया जाता है। किसी देवताके उद्देश्यसे प्रसाद बनाना या ब्राह्मण-भोजनके लिये भोजनकी सामग्रियोंका संग्रह करना जैसे आरम्भसे ही एक निश्चित उद्देश्यको लेकर होता है, उसी प्रकार भगवदर्थ कर्म करनेवाले साधकके प्रत्येक कर्मका आरम्भ श्रीभगवान्‌के उद्देश्यसे ही हुआ करता है।

२०-भगवत्प्राप्तिके लिये किया जानेवाला कर्म ही निष्काम कर्मयोग है।

२१-निष्काम कर्मयोगीको परमात्माकी प्राप्तिके लिये कर्तव्यकर्मोंको छोड़कर एकान्तमें भजन-ध्यान करनेकी भी आवश्यकता नहीं रहती।

२२-भजन-ध्यान तो सदा-सर्वदा ही परम श्रेष्ठ है। परन्तु एकान्तमें भजन-ध्यान न करके भी भगवच्चिन्तनसहित शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मोंको निरन्तर करता हुआ ही निष्काम कर्मयोगी परमात्माकी शरण और उसकी कृपासे परमगतिको प्राप्त हो जाता है।

२३-अपने-अपने वर्णधर्मके अनुसार कर्ममें लगा हुआ पुरुष सिद्धिको प्राप्त हो जाता है, अवश्य ही कर्म करते समय मनुष्यका लक्ष्य परमात्मामें रहना चाहिये।

२४-जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री पतिको ही अपना सर्वस्व मानकर पतिका ही चिन्तन करती हुई, पतिके आज्ञानुसार, पतिके लिये ही मन, वाणी, शरीरसे नियत (अपने जिम्मे बँधे हुए) संसारके समस्त कर्मोंको करती हुई पतिकी प्रसन्नता प्राप्त करती है, इसी प्रकार निष्काम कर्मयोगी एक परमात्माको ही अपना सर्वस्व मानकर उसीका चिन्तन करता हुआ उसीके आज्ञानुसार मन, वाणी, शरीरसे उस परमात्माके ही लिये अपने कर्तव्य-कर्मका आचरण कर परमात्माकी प्रसन्नता और परमात्माको प्राप्त करता है।

२५-सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें परमात्माको व्यापक समझकर, सभीको

परमात्माका स्वरूप मानकर अपने कर्मोंद्वारा निष्काम कर्मयोगी भक्त भगवान्‌की पूजा करता है।

२६-जैसे धनका लोभी मनुष्य अपने प्रत्येक कर्ममें धनकी प्राप्तिका उपाय ही सोचता है। किसी तरह धन मिलना चाहिये केवल यही भाव उसके मनमें निरन्तर रहता है। जिस काममें रुपये खर्च होते हैं, रुपये आते नहीं या उनके आनेमें कुछ बाधा होती है, उस कामके वह समीप भी जाना नहीं चाहता। वह केवल उन्हीं कार्योंको करता है जो धनकी प्राप्तिके अनुकूल या सहायक होते हैं। इसी प्रकार निष्काम कर्मयोगी भी ''आठ पहर चौंसठ घड़ी'' मन, वाणी, शरीरद्वारा उन्हीं सब कर्मोंको करता है जो ईश्वरको सन्तुष्ट करनेवाले होते हैं।

२७-दूसरेके अच्छे-से-अच्छे कामकी ओर तनिक भी न ताककर प्रभुकी प्रसन्नताके लिये अपना काम कुशलताके साथ करे।

२८-राज-दरबारका एक विद्वान् पण्डित वेदगान सुनाकर राजाको जितना प्रसन्न कर सकता है उतना ही महलोंमें झाड़ू देनेवाला राजाका परम आज्ञाकारी मामूली वेतनका नौकर भी महलोंको साफ-सुथरा रखकर कर सकता है।

२९-निष्काम कर्मयोगीका लक्ष्य रहता है केवल एक परमात्मा।

३०-प्रत्येक कार्य भगवदर्पण होनेके कारण निष्काम कर्मयोगी परमात्माका सर्वथा कृपापात्र बन जाता है।

३१-जो परमात्माका निःस्वार्थ सेवक है, जो अपने प्रत्येक कर्मका समर्पण उस परमात्माकी प्रीतिके लिये उसीके चरणोंमें कर देता है, उससे यदि कोई भूल होती है तो उसपर अकारण सुहृद् परमात्मा कोई ध्यान नहीं देते। यह अनियम नहीं है किन्तु स्वार्थरहित सेवकके लिये यही नियम है।

३२-निष्काम कर्मयोगका साधक परमात्माकी प्राप्तिके लिये कर्मोंको परमात्मामें अर्पण कर देनेके कारण अन्तमें परमात्माके प्रसादसे परमात्माको पा जाता है।

३३-जिस कर्ममें आदिसे लेकर अन्ततक परमात्माका इतना नित्य और अविच्छिन्न सम्बन्ध है वह कर्म भक्तिरहित कभी नहीं हो सकता।

३४-गीतोक्त भक्तियुक्त कर्मयोगके साधकोंको तो भगवान्‌पर ही भरोसा रखकर सारी चेष्टाएँ करनी चाहिये। सब समय भगवान्‌को याद रखते हुए ही भगवान्‌में प्रेम होनेके उद्देश्यसे भगवान्‌के आज्ञानुसार ही सारे कर्म करने चाहिये।

३५-भगवदर्थ या भगवदर्पण कर्म करनेवाले पुरुषके द्वारा दृढ़ अभ्यास होनेपर भगवत्स्मृति होते हुए ही सारे कर्म होने लगते हैं।

३६-भगवदर्थ या भगवदर्पण कर्म तो साक्षात् भगवान्‌की ही सेवा है। यह रहस्य समझनेके बाद उसे प्रत्येक क्रियामें प्रसन्नता और शान्ति मिलनी चाहिये। क्या पतिव्रता स्त्रीको कभी पतिके अर्थ या पतिके अर्पण किये हुए कर्मोंमें झंझट प्रतीत होता है? यदि होता है तो वह पतिव्रता कहाँ?

३७-जिन्हें भगवदर्थ या भगवदर्पण कर्मोंमें झंझट प्रतीत होता है वे न कर्मोंके, न भक्तिके और न भगवान्‌के ही तत्त्वको जानते हैं।

३८-जो सच्ची पतिव्रता स्त्री होती है वह तो पतिको अपने हृदयमें रखती हुई ही पतिके आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई हर समय पतिप्रेममें प्रसन्न रहती है।

३९-भगवान्‌के आज्ञानुसार भगवत्कार्य करनेवाले भगवद्भक्तका हर समय यह भाव रहना चाहिये कि मैं भगवान्‌का सेवक हूँ।

४०-जो स्थिति परमेश्वरके स्वरूपमें भेदरूपसे होती है, यानी परमेश्वर अंशी और मैं उसका अंश हूँ। परमेश्वर सेव्य और मैं उसका सेवक हूँ, इस भावसे परमात्माकी प्रीतिके लिये उसके आज्ञानुसार फलासक्ति त्यागकर जो कर्म किये जाते हैं उसका नाम है निष्काम कर्मयोग-निष्ठा।

४१-साधारण सकाम कर्मोंमें और निष्काममें भेद इतना ही है कि सकामकर्मी कर्मका अनुष्ठान सांसारिक कामनासिद्धिके लिये करता है और निष्कामकर्मी भगवत्प्रीत्यर्थ करता है।

४२-जिस क्रियामें भगवान्‌की सम्मति हो, वही काम करे और वह काम केवल उसके लिये ही करे।

४३-जो भी स्वेच्छासे काम करे, सावधानीसे करे, स्वार्थको त्यागकर

करे और दूसरोंके हितकी दृष्टिसे करे। वही काम करे जिससे भगवान् प्रसन्न हों और स्वयं अपने मस्तकपर भगवान्का हाथ समझ-समझकर हर समय प्रसन्न रहे। यह बड़ा अच्छा साधन है। अपनी बुद्धिके अनुसार वही कार्य करता रहे, जिस कार्यसे भगवान् प्रसन्न हों।

४४-स्वेच्छासे तो भगवान्की प्रसन्नताके अनुसार, उनकी आज्ञाके अनुसार कार्य करता रहे और अनिच्छा तथा परेच्छासे होनेवालेको भगवान्का भेजा हुआ प्रसाद समझता रहे।

४५-प्रतिदिन कुछ समय एकान्तमें भजन-ध्यान, स्वाध्याय-सत्संगके लिये भी निकालनेकी आवश्यकता है अन्यथा भगवान् सब जगह सब रूपोंमें हैं, यह बात हमें याद ही नहीं आवेगी और हम केवल कर्मके प्रवाहमें बहते रहेंगे।

४६-भगवान्की पूजा-बुद्धिसे कर्म करनेवाला व्यवहारमें सबके साथ अपने अधिकारके अनुसार बर्ताव करता हुआ भी भीतर सजग रहेगा कि इन सब रूपोंमें वह मायावी ही खेल कर रहा है।

४७-सब कुछ परमात्माका समझकर उसके अर्पण कर दे और प्रत्येक क्रिया करते समय भगवान्को याद रखे।

४८-हमारा कर्म भगवान्की पूजा तभी कहला सकता है जब उसमें दो बातें प्रधानरूपसे हों। पहली बात तो यह है कि उसमें ममता, आसक्ति एवं फलेच्छाका त्याग होना चाहिये। इनमेंसे सबसे स्थूल बात फलेच्छाका त्याग है और उसकी पहचान है सिद्धि-असिद्धिमें समता। यदि हमें अपनी सफलतापर हर्ष एवं असफलतापर विषाद होता है तो हमने उस कर्मके द्वारा भगवान्की पूजा की है, यह नहीं कहा जा सकता। दूसरी बात यह है कि प्रत्येक कर्म करते समय हमें इस बातका स्मरण होना चाहिये कि हम इस कर्मके द्वारा भगवान्की पूजा कर रहे हैं और जिसकी हम सेवा कर रहे हैं, वह भगवान्का ही स्वरूप है।

४९-साधकोंको दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि सारे संसारके पदार्थ भगवान्के ही हैं।

५०-भगवान्‌के कहे हुए वचनोंमें विश्वास करके उनके आज्ञानुसार स्वार्थके त्यागपूर्वक शास्त्रविहित कर्मोंका आचरण करते रहनेसे आसक्तिका नाश और कर्मयोगके तत्त्वका ज्ञान होता चला जाता है। इस प्रकार करते हुए जब आसक्तिका नाश और कर्मयोगके तत्त्वका ज्ञान हो जाता है तब कर्मयोगका सम्पादन कठिन नहीं प्रतीत होता।

५१-कर्मयोगके साधनका आरम्भ तो देहाभिमानके रहते हुए भी अन्तःकरणकी मलिन अवस्थामें भी हो सकता है और उसके द्वारा पवित्र हुई बुद्धिमें भगवत्कृपासे स्वाभाविक ही स्थिरता होकर और भगवद्भावका उदय होकर भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। यही इसकी ज्ञानयोगकी अपेक्षा सुगमता और विशेषता है।

५२-यथार्थ कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको स्वार्थरहित होकर लोकहितके लिये ही कर्म करने चाहिये।

५३-स्वार्थ और राग-द्वेषको छोड़कर किये हुए कर्म ही कर्मयोगके साधकके लिये भगवत्प्राप्ति करानेवाले हैं और सिद्धोंकी शोभा बढ़ानेवाले हैं।

५४-सभी कार्योंमें स्वार्थत्याग प्रधान है। किसी भी वैध कार्यमें स्वार्थका त्याग होनेसे नीच-से-नीच प्राणीका भी कल्याण हो जाता है।

५५-थोड़ा-सा भी कर्म निःस्वार्थभावसे बन जाय तो वह मुक्ति करनेवाला होता है। फिर सदा-सर्वदा जिसके सम्पूर्ण कर्म निःस्वार्थभावसे होते हैं, वे तो मुक्तरूप ही हैं? उनके तो दर्शन, स्पर्श, भाषणसे दूसरे पवित्र हो जाते हैं—मुक्त हो जाते हैं।

५६-स्वार्थ (स्व-अर्थ) का अभिप्राय है—"अपने लिये", अपने व्यक्तिगत लाभके लिये और निःस्वार्थका अर्थ है—"अपने लिये नहीं" अर्थात् दूसरों (समष्टि) के हितके लिये।

५७-वास्तविक हित चाहनेवाले पुरुषको मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाकी इच्छाका भी सर्वथा त्याग करके विशुद्ध निःस्वार्थभावसे ही लोक-हितार्थ कर्म करने चाहिये।

५८-सम्पूर्ण प्राणियोंके कल्याणके उद्देश्यसे ही मनुष्यको शास्त्रविहित कर्मोंमें प्रवृत्त होना चाहिये।

५९-कर्मोंमें सब प्रकारके फलकी इच्छाके त्यागका नाम ही स्वार्थ-त्याग है।

६०-मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाका एवं स्वार्गादिके भोगकी इच्छाका भी सर्वथा त्याग कर उस त्यागके अभिमानका भी त्याग होनेसे सर्वथा स्वार्थका त्याग होता है।

६१-निष्कामभाव तो हृदयमें रखने योग्य एक गोपनीय निधि है। वह ढिंढोरा पीटनेकी चीज नहीं।

६२-स्वार्थत्यागरूप धर्मके सेवनसे समस्त अनर्थोंकी मूल हेतु आसक्तिका शनैः-शनैः त्याग हो जाता है।

६३-स्वार्थरहित कर्मोंका अनुष्ठान कर्ताको बाँध नहीं सकता (गीता ४। १४; ५। १०)।

६४-स्वधर्मके अनुसार आसक्ति और स्वार्थरहित होकर अखिल जगत्में परमात्माको व्यापक समझकर सबकी सेवा करनेके भावसे अपना-अपना कर्तव्यकर्म मनुष्यको करना चाहिये।

६५-जैसे पारा और संखिया अमृतका-सा काम दे सकता है, यदि वह चतुर वैद्यके द्वारा शोधकर शुद्ध कर लिया जाय। इसी तरह जहाँतक कर्मोंमें स्वार्थ और आसक्ति है वहींतक उनसे बन्धन या मृत्यु प्राप्त होती है। जिस दिन स्वार्थ और आसक्ति निकालकर कर्मोंकी शुद्धि कर ली जाती है उसी दिन वे अमृत बनकर मनुष्यको परमात्माका अमरपद प्रदान करनेमें कारण बन जाते हैं।

६६-यदि भगवत्प्राप्तिकी इच्छा है तो वास्तविक त्याग कीजिये। हृदयसे अपना सर्वस्व प्रभुका समझिये। प्रभुके लिये ही सारे काम कीजिये। ममता, अहंता और आसक्तिको जड़से उखाड़ डालिये।

६७-कर्मोंकी बहुलता स्थितिमें बाधक नहीं है, राग-द्वेष और काम-क्रोधादि अवगुण ही बाधक हैं।

६८-जिसका मन पदार्थों और कर्मोंमें आसक्त नहीं होता वही योगी है। क्रिया करता है पर आसक्त नहीं होता। स्फुरणा हो पर आसक्ति नहीं, ऐसा सर्वसंकल्पोंका त्यागी ही योगारूढ है।

६९-जो कुछ भी कार्य करे उसमें अहंकारका त्याग कर दे। किसी भी उत्तम कार्यमें अहंकारको पास न आने दे।

७०-फलकामना, आसक्ति और कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर केवल लोकहितार्थ कर्मोंको करना चाहिये।

७१-''आसक्तिसहित कर्मफलका त्याग ही कर्मयोग है।''

७२-कुपथ्यके सेवनमें भी विचार करके देखा जाय तो जैसे रोगीकी मूर्खता ही हेतु है, इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, धन, देह और मान-बड़ाई आदिमें जो हमारी आसक्ति है, उसमें भी मूर्खता ही हेतु है।

७३-कर्मोंकी क्रिया मनुष्यको नहीं बाँधती, फलकी इच्छा और आसक्तिसे ही उसका बन्धन होता है। फल और आसक्ति न हो तो कोई भी कर्म मनुष्यको बाँध नहीं सकता।

७४-अपना कर्तव्यकर्म छोड़नेकी किसीको भी आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है प्रभुको प्रसन्न करनेके लिये स्वार्थ छोड़कर अपने कर्तव्यकर्म उस प्रभुके अर्पण करनेकी, यही अपने कर्मोंसे परमात्माकी पूजा है और इसीसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

७५-जिन लोगोंको एकान्तमें सांसारिक विक्षेप सताते हैं, वे अधिक समयतक कर्मरहित होकर एकान्तवासके अधिकारी नहीं हैं। जगत्‌में ऐसे ही लोग अधिक हैं।

७६-संसारमें प्राय: अधिकांश अधिकारी कर्मके ही मिलते हैं।

७७-शास्त्रोक्त सांसारिक कर्मोंकी गति भगवत्‌की ओर मोड़ देनेका ही विशेष प्रयत्न करना चाहिये, कर्मोंको छोड़नेका नहीं।

७८-स्वरूपसे कर्मत्यागकी तो गीताने निन्दा की है और उसे तामसी त्याग बतलाया है।

७९-मोहसे कर्मोंको छोड़ बैठनेवाला अज्ञानी वास्तवमें त्यागी नहीं है।

८०-किसी भी कर्तव्यकर्मके त्यागकी आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है बुद्धिकी शुद्ध करनेकी।

८१-आसक्ति न छूटे तो कोई चिन्ता नहीं, सब कुछ भगवान्‌का समझकर जैसे गुमाश्ता (नौकर) मालिकके लिये काम करता है, वैसे ही अपना स्वार्थ छोड़कर संसारके सम्पूर्ण काम भगवान्‌के लिये ही करने चाहिये।

८२-निष्काम प्रेम-भावसे सबकी परम सेवा करनेके सदृश अन्य कोई भी कार्य नहीं है।

८३-संसारमें रहकर शुद्ध हृदयसे काम किया जाय तो बहुत अच्छी तरह काम चल सकता है।

८४-जो मनुष्य कामको लीलामात्र समझ लेगा वह कामसे कभी घबरायेगा नहीं।

८५-निष्कामभावसे तन, मन, धन दूसरेके काममें लग जाय वही समय काम आया, बाकी सब धूलमें गया।

८६-कर्म आसक्तिसे रहित होकर करे, उसके सिद्ध होने और न होनेमें समानभाव रखे।

८७-सत्यकी चेष्टा कभी व्यर्थ नहीं जाती।

८८-सकामभावसे श्रद्धा कम ही होती है। यदि निष्कामभावकी श्रद्धा हो तो घटे नहीं। सकामभावकी श्रद्धा तो कामना पूरी होनेसे घट सकती है, या कामना पूरी होनेकी आशा नहीं हो तो घट जाती है।

८९-जीवन्मुक्त पुरुषके लिये तो कोई भी कर्म शेष नहीं रहता। जब उसकी दृष्टिमें एक परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीका भी अस्तित्व नहीं रहता तब किसी भी कर्मका भोग उसे कैसे भोगना पड़ता है।

९०-लोभ-त्यागपूर्वक केवल धर्मकी भावनासे, भगवान्‌को ही सब कुछ जानकर और उन्हींकी आज्ञा मानकर, जो व्यावहारिक कर्म किये जाते हैं, उनसे संसारके लोगोंको बहुत लाभ होता है।

९१-जिनके व्यवहारमें अपने लिये केवल शरीर-निर्वाहमात्रका ही भाव रहता है, वह भी चाहे न हो, और जिनको लाभ-हानिमें हर्ष-शोक नहीं होता, ऐसे पुरुषोंका व्यवहार केवल लोक-हितके लिये ही हुआ करता है, धनके लिये नहीं, इसीका नाम निष्काम व्यवहार है। इससे हृदयकी बड़ी शुद्धि होती है।

९२-घरके तथा संसारके समस्त मनुष्योंके साथ स्वार्थ छोड़कर उनका हित-चिन्तन करते हुए जो बर्ताव किया जाता है, वही बर्ताव उत्तम है और उसीसे हृदयकी शुद्धि होती है।

९३-अपना शरीर और अपने प्राण यदि भगवान्‌के काममें लग जायँ तो अपनेको धन्य मानना चाहिये।

९४-निष्कामभावसे लोगोंको खूब काम करना चाहिये। लोगोंकी खूब सेवा करनी चाहिये।

साधनकी बातें

१-किसीके लड़का न हो तो गोद न ले, यदि नाम चलानेका उद्देश्य हो तो खयाल करना चाहिये कि हमलोगोंकी ३-४ पीढ़ी पूर्वका नाम ही कोई नहीं जानता।

२-किसीसे लड़ाई न करे, "हरे राम" मन्त्रकी १४ माला जप करे, नीलका कपड़ा न पहने, मिलका कपड़ा न पहने, किसीको बुरी दृष्टिसे न देखे।

३-आपको विचार करना चाहिये कि संसारमें आकर मैंने क्या किया? पशुमें और मुझमें क्या अन्तर है? खाना, सोना और विषयभोग तो पशु भी करते हैं। फिर पशुसे अधिक आपको क्या आनन्द मिला?

४-कालका जरा भी विश्वास नहीं करना चाहिये।

५-विश्वासपूर्वक कटिबद्ध होकर भजन, ध्यानका साधन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। फिर काम-क्रोधका आप ही नाश हो सकता है।

६-जब भजन करते-करते आनन्द आता है तभी भजनका मर्म जाना जा सकता है।

७-तुमको ऐसी किस वस्तुकी आवश्यकता है, जिसके लिये तुम भगवान्-सरीखे प्रिय मित्रके प्रेम-चिन्तनको छोड़कर मिथ्या, क्षणभंगुर संसारके चिन्तनमें अपने अमूल्य समयको बिता रहे हो।

८-संसारका काम निष्कामभावसे अनासक्त होकर करना चाहिये।

९-एक पल भी व्यर्थकी बातोंमें तथा काममें नहीं बिताना चाहिये। भगवान्‌को छोड़कर अन्तमें कोई भी तुम्हारा साथी नहीं है। ऐसा जानकर उस नारायणको एक पलके लिये भी नहीं छोड़ना चाहिये।

१०-व्याख्यान देनेवालेके भजन-ध्यानसे भी ज्यादा फायदा है। क्योंकि यदि व्याख्यान देनेवालेमें वह गुण नहीं हो तो भी व्याख्यान देनेसे आज जो बात कही जाती है वह धारण करनेकी चेष्टा हो जाती है।

११-अर्जुन भगवान्‌का कितना बड़ा भक्त था, फिर भी भगवान्‌ने कह दिया यदि तू मेरी बात नहीं मानेगा तो नष्ट हो जायगा, फिर और लोगोंकी तो बात ही क्या है। इसलिये उनके कहनेके माफिक चलना ही ठीक है।

१२-लोगोंको अपने अवगुण स्वयं ही सोचने चाहिये। आप ही सोचनेसे उसकी बुद्धिका विकास होता है तथा अवगुणोंके नाश करनेकी चेष्टा भी होती है।

१३-हमें आलसी नहीं होना चाहिये बल्कि बहुत परिश्रमी होना चाहिये। अन्यथा हमलोग सत्संगके कलंक लगानेवाले हुए कि सत्संग करनेवाले आलसी हैं। इसी बातके कारण लोग सत्संगमें नहीं लग रहे हैं। ऐसे लोग बहुत बड़ा नुकसान कर रहे हैं, क्योंकि उनके आचरण अन्य लोगोंको सत्संगमें आनेसे रोकनेवाले हुए।

१४-मनसहित भजन, ध्यान, सत्संग करनेके लिये मनसे हरदम लड़ाई करता रहे और मनको समझाता रहे कि ऐसी अवस्थामें तेरी मृत्यु हो जायगी तो तेरी क्या दशा होगी।

१५-जिसमें ज्यादा लाभ हो उसमें समय बिताना सबसे ऊँचा काम है।

इससे भी ऊँचे भाव ये हैं—

१. ऊँचे दरजेकी बात अनुभवी पुरुषोंद्वारा सुननी।

२. जपसहित ध्यान।

३. गीताजीका अर्थ और भावसहित विचारना।

४. भगवान्‌के नामका जप तथा श्रीमद्भगवद्गीताके मूल श्लोकोंको पढ़ना।

उपर्युक्त चार बातोंमें चौथी बातके १०० वर्ष करनेसे जितना फायदा है, उतना ऊपरवाली ३ बातोंको काममें लानेसे ५-७ वर्षमें हो सकता है। प्राय: मनुष्योंके लिये चौथी बात ही होती है।

१६-युक्तिसहित साधन करनेसे बहुत जल्दी परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

१७-दो बातोंसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती, एक तो साधन न करनेसे, दूसरे युक्ति नहीं जाननेसे।

१८-'गजल-गीता' का पाठ रात्रिमें सोते समय करना चाहिये।

१९-'प्रेमभक्ति-प्रकाश' प्रेमसे सोच-सोचकर नित्य पढ़े।

२०-मुझे सबसे ज्यादा प्रिय है 'गीता' और "धार्मिक ग्रन्थोंका प्रचार" लेख लिखकर छोड़ जानेसे संसारका बहुत हित है। जैसे ऋषि-मुनि-प्रणीत शास्त्रोंसे संसारका हित हो रहा है।

२१-जो जीवित रहते हुए ही शरीरका आश्रय त्याग देता है, शरीरको मुर्देके समान समझ लेता है वही उत्तम है, वही जीवन्मुक्त है।

२२-मन, वाणी, शरीरसे ब्राह्मणोंका सत्कार करना चाहिये। विद्वानोंका तो विशेषरूपसे करना चाहिये।

२३-कलियुगमें ऐसा सरल समय भविष्यमें नहीं मिलेगा। भविष्यमें तो ऐसे मनुष्य होवेंगे कि हम कहते हैं वही धर्म है, हमको ही दो, हमारी ही सेवा करो, ऐसे वह देनेवाला और लेनेवाला दोनों ही नरकमें पड़ेंगे। ऐसा अनुमान होता है कि नरकमें भी शायद जगह नहीं रहेगी। जैसे गांधीजीके आन्दोलनसे सरकारके जेलमें जगह नहीं रही। इसी तरह नरकादिकी जगह भी सीमित है।

२४-अन्तःकरण शुद्ध हुए बिना राग-द्वेष, सुख-दुःख, शोक-मोह आदि हुए बिना नहीं रह सकते। संसारकी सत्ताका अत्यन्त अभाव नहीं होता। भजन, ध्यान, सत्संग और निष्काम कर्म करनेसे तथा भगवान्‌के प्रेम, भक्ति और ज्ञानकी बातोंके पढ़नेसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है।

२५-बड़ाई करनेवाले तो अपनेको सब तरफसे ठगते हैं। ऊपरका धन तथा अपने मनमें प्रसन्नता हो जाय तो अपने परमार्थका धन दोनोंको हर लेते हैं।

२६-आत्माकी गतिमें तम्बाकू बहुत नुकसान पहुँचानेवाली है।

२७-ऐसी चेष्टा करे जिससे अनाजमें जन्तु नहीं पड़े।

२८-चाहे जैसा भी पापी क्यों न हो उसका भी कल्याण हो सकता है। हिम्मत रखे।

२९-भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान एवं स्वार्थको त्याग-कर दुःखी जीवोंकी सेवा करनेसे एवं न्यायोपार्जित द्रव्यसे संगृहीत आहार करनेसे अन्तःकरण पवित्र होता है, तब श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेमकी वृद्धि होती है। इनकी वृद्धि होनेसे विषयासक्तिका नाश हो जाता है और विषयासक्तिके नाश हो जानेपर काम-क्रोधादि षड्‌रिपु कभी उत्पन्न नहीं होते।

३०-परमेश्वरकी दयासे सतयुग प्राप्त होता है एवं प्रकृतिके संगसे नीचे उतरता है। पानी जैसे नीचे जाता है वैसे ही जीवोंका नीचे गिरना तो सहज है। ऊपर जाना ही पुरुषार्थका काम है।

३१-पतिव्रता स्त्री अपने पतिमें मन रखते हुए संसारका काम करती है, उस प्रकार करनेसे साधन परिपक्व हो जाता है।

३२-अपनेमें पुरुषार्थकी न्यूनताका अनुमान करके निराश नहीं होना चाहिये।

३३-चौरासी लाख योनियोंके भोगोंको भोगनेके उपरान्त बड़ी कठिनाईसे यह मनुष्य-शरीर हमें मिला है। अतः मनुष्यजन्मका वास्तविक उद्देश्य समझकर जगत्‌के मिथ्या प्रपञ्चोंको छोड़ देना चाहिये।

३४-तन, मन, धनसे सेवा करनेके विषय—

(१) एक दिन भगवान्‌का भजन करना (तन),

(२) एक मिनट मनसे भगवान्‌का चिन्तन (मन),
(३) दस हजार रुपया लगाना (निष्काम धन)—
ये तीनों फलमें बराबर हैं।

३५-मन जहाँ-जहाँ जाय, वहाँ-वहाँ भगवान्‌के स्वरूपके चिन्तनका अभ्यास करना चाहिये।

३६-मन जहाँ-जहाँ जाय, वहाँ-वहाँसे खींचकर भगवान्‌के स्वरूपमें लगाना चाहिये।

३७-संसार, शरीर और भोग, ये सब क्षणभंगुर और नाशवान् हैं। देखते-देखते नाश होते जा रहे हैं। यदि मूर्खतासे कोई इन्हें सत्य भी मान ले तो सुख इनमें लेशमात्र भी नहीं है। मूर्खतासे यह जिसको सुख मानता है, विचारकर देखनेसे उसमें दुःख और शोकके ही भण्डार निकलते हैं।

३८-मन्त्र-जप करनेवाले विष्णुभक्तके लिये एकान्तमें "**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**" और सब समय "राम" नामका जप उत्तम है। जिनकी भक्ति शिवजीमें है उन पुरुषोंके लिये एकान्तमें "**ॐ नमः शिवाय**" और सर्वकालमें "शिव" नामका जप उत्तम है।

३९-समय बीता जा रहा है। जो समयको अमूल्य जान लेगा वह एक पल भी व्यर्थ काममें नहीं बितायेगा। भगवत्-चिन्तनके बिना जो किसी दूसरे काममें समय बिताया जाता है वही व्यर्थ है।

४०-समय बड़ा अमूल्य है। इस प्रकारका अवसर मिलना बहुत ही कठिन है, जो ऐसा समझेगा वह तो अपने अमूल्य समयको अमूल्य काममें बितावेगा।

४१-भजन हुए बिना कुछ भी उपाय नहीं है।

४२-भजन न होनेमें सत्संग, प्रेम और पुरुषार्थका अभाव ही प्रधान कारण समझा जाता है।

४३-पुरुषार्थहीनका भगवान् भी उद्धार नहीं कर सकते।

४४-जिनकी प्रभुके निराकाररूपमें भक्ति है उनके लिये "**ॐ**" मन्त्रका जप उत्तम है।

४५-मान, बड़ाई आदिकी कामनाको जीतनेवाला ही दुर्लभ है।

४६-किसी समय भी इस कल्पित संसारकी सत्ता मानना उचित नहीं। इस खेलको जो मनुष्य सत्य समझ लेता है वह ठगा जाता है।

४७-समयको अमूल्य जानना चाहिये। ऐसा जाननेवाला एक पल भी मिथ्या कामोंमें नहीं खोता। जो मिथ्या और वृथा कामोंमें समय व्यतीत करता है वह समयके मूल्यको नहीं जानता।

४८-संसारमें जीवको सुख तो देखनेमें नहीं आता फिर भी यह जीव संसारमें भटकता क्यों फिरता है? मूर्खता अर्थात् अज्ञानके कारण जीव संसारमें भटकता है। इसने भूलसे संसारमें सुख मान रखा है, मृगतृष्णाके जलकी तरह संसारमें मिथ्या सुख भासता है, इसीसे यह मूर्खतामें फँसकर मृगकी तरह भटकता फिरता है।

४९-ऐश-आराम, स्वाद-शौकीनी आदि इन्द्रियोंके सारे भोगोंको विषवत् त्याग देना चाहिये। संसारके सारे भोग मिथ्या हैं। यदि मिथ्या न दिखें तो क्षणभंगुर और अन्तमें दुःख देनेवाले तो हैं ही। ऐसा समझकर भोगोंसे उपराम होना चाहिये। ये विषयभोग कल्याण-मार्गमें बहुत ही हानि पहुँचानेवाले हैं, ऐसा मानकर इन्हें मनसे छोड़ देना चाहिये।

५०-शुद्ध आयुर्वेदिक दवा ही लेनी चाहिये। डाक्टरी दवाई कभी नहीं लेनी चाहिये, प्राण भले ही चला जाय। माता-पिताके कहनेपर भी नहीं लेनी चाहिये, क्योंकि त्याज्य वस्तु कभी ग्राह्य नहीं है।

५१-भगवान्‌की इच्छा बिना कुछ भी नहीं हो सकता। उनकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। जो ऐसा समझता है वह मालिककी राजीमें राजी रहनेवाला सब समय आनन्दमें मग्न रहता है।

५२-चिन्ता, शोक, भय कभी नहीं करना चाहिये। यदि मनुष्य करता है तो वह मूर्ख है।

५३-सांसारिक भोग-विलास, धन, स्त्री, पुत्रकी वृद्धि देखकर जो प्रसन्न होता है वह भी मूर्ख है और सांसारिक वस्तुकी हानि देखकर जो चिन्ता करता है वह भी मूर्ख है।

५४-आराम, मौज-शौक आदि विलासिता-सहित संसारकी सारी भोगासक्तिका मनके द्वारा त्याग करना चाहिये। ऐसा होनेसे ही सुख सम्भव है।

५५-भगवान्‌के भक्त निपुण वैद्य हैं, वेद, शास्त्र और भक्तिसम्बन्धी ग्रन्थ ही वैद्यकशास्त्र हैं, उत्तम कर्म तथा उत्तम आचरण सुपथ्य है और पापाचरण ही कुपथ्य है।

५६-समयको अमूल्य समझना चाहिये, समयकी अमूल्यताका रहस्य समझनेके बाद और कुछ भी समझना बाकी नहीं रह जाता।

५७-केवल सतोगुणी वृत्तिसे ही कल्याण नहीं होता, जैसे सत्ययुगमें भी कल्याण साधनसे ही होता है।

५८-जैसे रेलवे स्टेशनपर टिकट लेकर मनुष्य गाड़ीमें बैठनेके लिये तैयार रहता है, उसी प्रकार सब काम निपटाकर तैयार रहना चाहिये, फिर कोई चिन्ताकी बात नहीं।

५९-जो मृत्युको हर समय सामने खड़ी देखे—चाहे जब ले जाय—इस प्रकार तैयार रहे वह कृतकृत्य है।

६०-जिन्होंने संसारको हर समय दृढ़ कर रखा है, उनको हर समय भगवान्‌का चिन्तन किस प्रकार हो सकता है?

६१-अनित्य वस्तुके लिये नित्य वस्तुका त्याग करनेवालेके बराबर कौन मूर्ख है?

६२-जो साधन निरन्तर विशेष कालतक और आदरपूर्वक होता है, वही महत्त्वका समझा जाता है।

६३-कन्यादान साधुको करे तो इसमें दोनों नरकमें जावेंगे। तामसी दानमें लेने और देनेवाले दोनोंको नरक होता है। जैसे कोई कसाईको गाय दान दे।

६४-ग्रहणके समय कन्यादान न करे, वह समय तो भूखोंको अन्न आदि दान देनेका है।

६५-दूध, घी, खोआ गायका सात्त्विक तथा भैंस, बकरीका नं० २ है।

६६-एक महत्त्वकी बात है जिसके माननेसे आपका कल्याण हो जायगा।

६७-जो कुछ पुण्य कर्म किया हुआ है वह सब परमात्माके अर्पण कर

दिया फिर उसपर पीछेका कर्म लागू नहीं पड़ता। जितना पीछेका कर्म है वह तो भगवान्‌के अर्पण कर दिया और आगे करे वह गीता अ० १२ श्लोक १० के अनुसार भगवदर्थ करे। यदि भगवदर्थ कर्म नहीं कर सके तो जो काम करे उसको गीता अ० १२ श्लोक ११ के अनुसार भगवदर्पण कर दे। भगवदर्थ कर्म करनेसे गीता अ० ९ श्लोक २८ के अनुसार शुभाशुभ कर्मसे छुटकारा प्राप्त हो जायेगा।

६८-कर्म अर्पण इस प्रकार कर सकते हैं—

(१) मनसे आजतक जो कुछ शुभ कर्म बनता है वह सम्पूर्ण आपकी प्रेरणासे बना है वह सब आपके अर्पण है, मुझे इसका फल बिलकुल नहीं चाहिये और जो दूषित कर्म बन गया उसको भुगता दीजिये या माफ कर दीजिये।

(२) अच्छा कर्म भगवान्‌के अर्पण करनेके बाद बुरे कर्मका फल उसे नहीं भोगना पड़ता।

प्रश्न—साधकने एक बार तो सब कर्म भगवान्‌के अर्पण कर दिये, फिर आसक्तिके कारण उससे शास्त्रविरुद्ध कर्म होते रहें तो क्या करे?

उत्तर—जो कर्म करे वह भगवान्‌के अर्पण करता जाय ऐसा करते-करते शास्त्रविरुद्ध कर्म उससे छूट जायेंगे, किंतु यदि कोई आदमी यह समझ लेवे कि पाप तो कर लें फिर पीछे भगवान्‌के अर्पण कर देवेंगे तो उसका वह कर्म बिना भोगे नहीं नाश होता।

६९-साधन बढ़ाना चाहिये किंतु काम नहीं छोड़ना चाहिये। साधन शनैः-शनैः बढ़ावे।

७०-जितना आरामका त्यागी है, उतना ही भगवान्‌के नजदीक है।

७१-नास्तिकका भी त्यागके कारण आदर किया जाता है, यह त्यागकी ही महिमा है।

७२-कलियुगके वर्तमान समयमें संन्यास-आश्रममें सुगमता नहीं है।

७३-एक गृहस्थाश्रम ही है, बेफिक्र होकर भजन-ध्यान करो।

७४-मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, क्या कर रहा हूँ, मेरेको क्या करना

चाहिये? मैं परमात्माका अंश हूँ। लाख योनियोंसे संसार-चक्रमें भ्रमण करता-करता आया हूँ। अपने स्वरूपको पहचानना ही कर्तव्य है, यह बात विचारता रहे।

७५-जो बात आत्मामें युक्तिसंगत, हितकारी निश्चित हो जाय उसको कटिबद्ध होकर काममें लावे तो निम्नलिखित लाभ प्राप्त होंगे—प्रत्यक्ष फल परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है और जिन पुरुषोंको परमात्मा कोसों दूर मालूम देता था या दीखता ही नहीं था, वही परमात्मा इस प्रकार साधन करनेसे उन्हीं पुरुषोंको रोम-रोम, पत्तों-पत्तोंमें दीखने लगेगा, संसार दुःखमयके बदले आनन्दमय हो जायगा, भगवत्स्वरूपमें निष्ठा रखनेवाले साधकको परमशान्तिका साम्राज्य प्राप्त हो जायगा। चारों तरफ शान्ति-ही-शान्तिकी स्थिति हो जायगी।

७६-आश्रय, शिक्षा, उपदेश, प्रेरणा, आज्ञा, वरदान एक-से-एक बलवान् हैं। प्रेरणाके अनुसार साधन करनेसे वरदानके माफिक लाभ हो सकता है।

७७-जिस आदमीमें जो गुण हो उसका चिन्तन करनेसे उसका गुण आता है। जैसे श्रीभगवान्‌का और उनके भक्तोंका चिन्तनसे उनके गुण आते हैं।

७८-अग्नि, गाय, ब्राह्मण, तुलसी, गङ्गा—इनको देवताके समान आदर देना चाहिये।

७९-परमात्माको हर समय याद रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

८०-मनको विचारना चाहिये कि मैंने इस संसारमें आकर क्या किया और क्या करना चाहिये। इसी तरह यदि और भी समय बीतेगा तो फिर कैसे जल्दी कामयाबी होगी। समयको अमूल्य काममें बिताना चाहिये।

८१-श्रीभगवान्‌के दर्शनकी भी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। यदि दर्शनकी इच्छा नहीं रखनेसे साधन ढीला होता हो तो भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा रखनी चाहिये।

८२-मनुष्यको ऐसा बनना चाहिये कि अपनेको जीवित रहते हुए ही भगवत्प्राप्ति हो जाय।

८३-बुद्धिको कुशाग्र और तीक्ष्ण करनेके लिये सत्पुरुषोंका संग एवं सत्-शास्त्रोंका विचार करना चाहिये। निष्काम कर्मयोग और उपासनाके द्वारा पवित्र होनेसे भी बुद्धिमें कुशाग्रता और तीक्ष्णता आती है और स्मरणशक्ति बढ़ सकती है। ब्रह्मचर्यका पालन इसमें विशेष सहायक होता है।

८४-शुद्ध आहार-विहारका सेवन, एवं ब्रह्मचर्यके पालन और योगके साधनसे आयुका बढ़ना भी सम्भव है।

८५-जो भगवान्‌को छोड़ संसारका चिन्तन करता है उसको मूर्ख समझना चाहिये।

८६-भजनको सच्चे मनसे सर्वोत्तम मान लेनेके बाद दूसरा चिन्तन अपने-आप कम होने लगेगा, वह भी थोड़े ही दिन होगा। संसारका चिन्तन जब आपके मनको अच्छा नहीं लगेगा तब भगवान्‌का ही चिन्तन अधिक होगा।

८७-संसारका चिन्तन हमारे लिये बड़ा घातक है। जो संसारका चिन्तन करते हुए मरेगा उसे संसारकी ही प्राप्ति होगी और जो भगवान्‌का चिन्तन करते हुए मरेगा उसे भगवान् ही प्राप्त होंगे। जो इस भेदको समझ जायगा उसे संसारका चिन्तन सहन नहीं हो सकता।

८८-संसारके चिन्तनका जब चोटकी भाँति दर्द होगा तब अपने-आप चेत हो जायगा। हम जितनी ही अधिक चोट सहते हैं उतनी ही अधिक चोट हमें लगती है।

८९-समयका मूल्य जान लेनेपर सफलतामें विलम्ब नहीं है।

९०-झूठ बोलनेसे पाप जरूर होता है और कोई फायदा भी नहीं होता। बात तो सच्ची ही कहनी चाहिये। उसके लिये गाली सुननी पड़े या नुकसान सहना पड़े तो कुछ हर्ज नहीं।

९१-अर्जुन भगवान्‌का अच्छा भक्त था। भगवान्‌का साक्षात्कार जाननेमें कुछ त्रुटि थी, ऐसे भक्तमें भी कुलका मोह हो गया, माया ऐसी चीज है, अद्भुत घटना भी घटा देती है।

९२-प्रश्नोत्तर—

१. प्रश्न—कामना छोड़नेके बाद भी कुछ बाकी रहता है क्या?

उत्तर—बहुत-सा काम हो जाता है थोड़ा बाकी रहता है।

(गीता २। ७१)

२. प्रश्न—हिंसक जीव सर्पादिको मारनेमें पुण्य है या पाप।

उत्तर—क्षत्रियके लिये पुण्य है, दूसरोंके लिये पाप।

३. प्रश्न—यदि मारनेके लिये आवे?

उत्तर—मारनेमें पाप नहीं है।

९३-आढ़तिये लोग जो कुछ धर्मादेका लगाते हैं वे रुपये धर्मादेके कामोंमें या चन्दे आदिमें दे सकते हैं, परंतु जिस जगह अपना नाम हो, उस जगह लगाना पाप है, क्योंकि वह रकम उसकी अपनी नहीं है।

९४-मठ, गौशालाका पैसा जिस ग्रामकी गौशालाके निमित्तसे निकलता है, उसी जगह ही लगाना चाहिये, दूसरी जगह लगाना पाप है।

९५-श्रीमंगलनाथजी महाराजने गोरखपुरमें कहा था—निष्कपट, निरभिमान, नि:स्वार्थभावसे श्रीभगवान्‌का भजन, ध्यान करनेसे बहुत जल्दी फायदा हो सकता है।

९६-मान-बड़ाईसे बचना चाहिये। मानसे भी बहुत सूक्ष्म है बड़ाई, इसका बहुत खयाल रखना चाहिये।

९७-विश्वासी और मेहनती होना चाहिये, इस प्रकार होनेसे सांसारिक काममें जैसे बहुत लाभ होता है, उसी प्रकार पारमार्थिकमें भी बहुत लाभ होता है।

९८-योगदर्शनके अनुसार साधन करनेमें एक-दो घंटा रोज लगाना चाहिये, जैसे लोग नया काम सीखनेमें समय लगाते हैं।

९९-अपनी जो सबसे प्यारी वस्तु हो, उसमें भगवान्‌की भावना करके मनको स्थिर करनेका अभ्यास करना चाहिये।

१००-जो साधक थोड़े भजन-ध्यानसे भगवान्‌का दर्शन चाहता है वह भजनका मर्म नहीं समझता, वह तो बोझा ढोकर मजदूरी लेनेवालेके समान है। जैसे बोझा ढोनेवालेको मजदूरी मिलती है वैसे ही उसे भगवद्विषयक धन मिलता है यानी आध्यात्मिक उन्नति होती है।

१०१-जिनको भगवान्‌के भजन, ध्यानमें रस आता है उनको भजन, ध्यानका थोड़ा आनन्द आया है। वास्तवमें भजन, ध्यानके मर्मको उन्होंने समझा है। जिनको भजन, ध्यानमें पूरा आनन्द आता है वे तो भगवान्‌की प्राप्ति भी नहीं चाहते। बल्कि यही चाहते हैं कि उनका भजन, ध्यान बढ़ता रहे। यदि बार-बार जन्म भी हो तो यही काम करता रहूँ।

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥

जब यह विश्वास हो जाय कि मृत्यु होनेपर माता, पिता, बेटा, रुपया कोई काम नहीं आयेगा, फिर समयको धूलमें क्यों मिलाता है।

साधनका उपाय इस तरह निकाले। २ माला सबेरे, २ माला दोपहर, २ माला रात्रिमें—इस तरह धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा समय निकालकर अभ्यास बढ़ाना चाहिये।

१०२-भगवत्प्राप्तिका सदाव्रत बाँटनेवाला बननेकी इच्छा करनी चाहिये यानी दूसरोंको मुक्त करा दें ऐसी इच्छा रखनी चाहिये। कमाकर खानेवाला होनेकी चेष्टा करनी चाहिये, भिखमंगा होनेकी नहीं करनी चाहिये यानी साधन करके ही भगवत्प्राप्ति चाहनी चाहिये।

१०३-कहनेवाले पुरुषोंमें सदाचार, विद्या और युक्ति हो तो लोगोंके ऊपर बहुत असर पड़ता है, सदाचारमें निःस्वार्थभावकी बहुत जरूरत है।

१०४-मार्मिक बात—पाँच आदमियोंको बेगार समझकर (उपेक्षा-भावसे) यदि भोजन कराया जाय तो उसका कोई फल नहीं है। यदि उनको ही हँसते हुए भगवान् या महात्मा समझकर जिमावे, सबमें ईश्वर-बुद्धि करे तो वह ईश्वरको ही भोजन कराना है। यदि सकामभाव हो तो स्वर्ग मिलता है और निष्कामभाव हो तो मुक्ति मिलती है।

१०५-भाव जितना तेज होता है उतना ही विशेष लाभ होता है।

१०६-मनुष्य-जन्म पाकर बुराईकी अपेक्षा भलाई लेकर जाना अच्छा है, श्रेयस्कर है।

१०७-सबसे बढ़कर बात—जो मनुष्य-जीवनके समयकी कीमत जान

गया वही धन्य है। परमात्माकी प्राप्ति एक क्षणमें हो सकती है, यदि वह क्षण अभी हो जाय तो अभी परमात्मा मिल सकता है। वह क्षण कैसा है? जिसे परमात्मा प्राप्त होता है वही जानता है, वह क्षण हठात् मिल सकता है।

१०८-किसी समयमें ऐसी शिक्षाकी बात यदि अपनेको सुननेको मिल जाय और वह समझमें आ जाय तो एक क्षणमें परमात्माकी प्राप्ति हो जाय।

१०९-अपने धर्मके पालनसे कल्याण निश्चित है—(गुरु गोविन्दसिंह)।

११०-हर समय उद्यमशील होना चाहिये, ५ मिनट भी फालतू नहीं बिताना चाहिये। समयको उत्तरोत्तर दामी बनाना चाहिये। फालतू आदमियोंसे बात करनेकी तो फुरसत ही नहीं होनी चाहिये। जिसमें न तो स्वार्थ हो और न परमार्थ हो, ऐसे कामके पास जाना ही नहीं चाहिये। निकम्मा नहीं रहे।

१११-तीन प्रकारकी कमाई करे तो बहुत उत्तम है—(क) मनसे भजन-ध्यान, (ख) वाणीसे सत्य और प्रिय वचन, नामका जप और (ग) शरीरके द्वारा परोपकार।

११२-नीचे लिखे अनुसार समय बिताये तो जल्दी ही कल्याण हो जाय, यह शास्त्रोंका निचोड़ और सब बातोंका सार है—

(क) सहनशील बनना, भारी-से-भारी आपत्तिको भी हर्षके साथ सहना। संकट सहनेसे मनुष्य पक्का होता है।

(ख) यावन्मात्र जीवोंपर दया करना।

(ग) निरन्तर भगवच्चिन्तन करना।

इन तीनों बातोंका पालन करनेवाला मानव पारसका भी महापारस आनन्दमूर्ति बन जाता है, आनन्दका सदाव्रत देनेवाला बन जाता है।

११३-महात्माओंका संग करके ज्ञानयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग आदिका तत्त्व-रहस्य समझकर अपनी रुचि और अधिकारके अनुसार महात्माके बतलाये हुए किसी एक साधनको विवेक, वैराग्य और धैर्ययुक्त बुद्धिसे आजीवन करनेका निश्चय करके उसी साधनके लिये तत्परताके साथ प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

११४-शास्त्रोंमें बतलाये हुए विभिन्न मार्गोंमेंसे किसी भी मार्गको निश्चित

कर प्राणपणसे प्रयत्न करना चाहिये। भगवत्कृपासे विजय निश्चित है, सफलता मिलेगी ही।

११५-परमात्माकी प्राप्तिके सभी साधन सुगम होनेपर भी सुगम माननेसे सुगम हैं और दुर्गम माननेसे दुर्गम हैं। श्रद्धापूर्वक तत्त्व और रहस्य समझकर साधन करनेसे सभी साधन सुगम हो सकते हैं।

११६-भगवान् और सत्पुरुषोंका आश्रय लेकर भजनकी जो कोशिश होती है वह अवश्य सफल होती है। उसमें कुसंग, आसक्ति और संचित बाधा तो डालते हैं, किन्तु इसके तीव्र अभ्याससे सब बाधाओंका नाश हो जाता है और उत्तरोत्तर साधनकी उन्नति होकर श्रद्धा और प्रेमकी वृद्धि होती है और फिर विघ्न-बाधाएँ नजदीक भी नहीं आ सकतीं।

११७-प्रभुमें श्रद्धा-प्रेम बढ़े, उनका चिन्तन बना रहे, एक पलके लिये भी उनका विस्मरण न हो, ऐसा ही लक्ष्य हमारा सदा बना रहना चाहिये।

११८-ज्ञान या प्रेम किसी भी मार्गका अवलम्बन करके उत्तरोत्तर उन्नति करता चला जाय। कलकी अपेक्षा आज कुछ-न-कुछ साधन बढ़ा ही देना चाहिये। इस प्रकार निरन्तर उन्नति करे। चलते-फिरते, उठते-बैठते किसी भी समय एक मिनटके लिये भी भगवान्‌को न भूले। भगवान् कहते हैं—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

(गीता ८। ७)

११९-सच्चे सुखकी प्राप्तिका साक्षात् सरल और सबसे सुलभ उपाय परमात्माके स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना ही है।

१२०-जीवनके अमूल्य समयका एक क्षण भी श्रीभगवान्‌के स्मरणसे रहित नहीं जाना चाहिये। जीवनमें सदा-सर्वदा जैसा अभ्यास होता है, अन्तमें भी उसकी स्मृति रहती है और अन्तकालकी स्मृतिके अनुसार ही उसकी गति होती है।

१२१-मनकी भजन-ध्यानकी ओर कम रुचि हो तो भी यही कोशिश करते रहे कि वह भजन-ध्यानमें लगा रहे। धीरे-धीरे उसमें रुचि होकर भजन-ध्यान ठीक हो सकता है।

१२२-साधकको यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि मुझे यह साधन किसी दिन छोड़ देना है। उसको यही समझना चाहिये कि यह साधन ही मेरा परम धन, परम कर्तव्य, परम अमृत, परम सुख और मेरे प्राणोंका परम आधार है।

१२३-जो लोग यह समझते हैं कि परमात्माका ज्ञान होनेके बाद हमें साधनकी क्या आवश्यकता है, वे भूल करते हैं। जिस साधनद्वारा अन्तः-करणको परम शान्ति प्राप्त हुई है, भला, वह उसे क्योंकर छोड़ सकता है?

१२४-श्रद्धा-भक्तिपूर्वक साधन करनेसे साधकके सम्पूर्ण दुर्गुणोंका, पापोंका और दुःखोंका मूलसहित नाश हो जाता है एवं वह कृतकृत्य होकर सदाके लिये परमानन्द और परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

१२५-परमेश्वर और उसकी प्राप्तिके साधनोंमें श्रद्धा और प्रेमकी कमी होनेके कारण ही साधन करनेमें उत्साह नहीं होता।

१२६-कल्याणकी प्राप्तिके सैकड़ों उपाय हैं परन्तु कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। साधन किये बिना कल्याण नहीं हो सकता।

१२७-हमारे सुखकी प्राप्तिमें तीन बड़े बाधक शत्रु हैं, उन्हींके कारण हम सुखके समीप नहीं पहुँच पाते। वे हैं मल, विक्षेप और आवरण। मल है मनकी मलिनता, विक्षेप है चञ्चलता और आवरण है अज्ञानका पर्दा। जबतक इन तीनोंका नाश नहीं होता तबतक यथार्थ सुखकी प्राप्ति असम्भव है।

१२८-मल-दोषके नाशके लिये कई उपाय बतलाये गये हैं।

इनमेंसे प्रधान दो हैं—भगवान्‌के नामका जप और निष्काम कर्म। साधनकी सफलता मन-बुद्धिकी पवित्रता और स्थिरतापर ही निर्भर है। साधनकी वृद्धिसे ज्यों-ज्यों अन्तःकरणकी निर्मलता और एकाग्रता बढ़ती है त्यों-ही-त्यों सच्चे आनन्दकी भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। निष्ठापूर्वक साधनसे ही मन और बुद्धिमें निर्मलता तथा स्थिरता आती है। मन और इन्द्रियाँ शुद्ध और स्थिर होकर भगवत्‌में प्रवेश कर जायँ इसके लिये पहले आवश्यकता इस बातकी है कि मन और इन्द्रियोंको अपने वशमें किया जाय। जबतक ये काबूमें नहीं आते तबतक भगवान्‌के स्वरूपमें स्थिर होकर

भगवान्‌की प्राप्ति हो नहीं सकती।

१२९-भगवत्-साक्षात्कारतारूप परम कल्याण और परम सुखकी प्राप्तिके साधनमें किंचित् भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। यही मनुष्य-जन्मका परम कर्तव्य है, यही सबसे बड़ा और सच्चा सुख है।

१३०-साधक यह समझता है कि मेरे साधनमें बाधा देनेवाले आसक्ति और अज्ञान आदि दोष कब दूर हों और कब मैं अपने परमधन परमात्माको प्राप्त करूँ। जितनी ही देर होती है उतनी ही उसकी व्याकुलता और उत्कण्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है और वह उस विलम्बको सहन नहीं कर सकता।

१३१-इच्छा करनेमात्रसे प्राप्त होनेवाले एक श्रीभगवान् ही हैं। दुनियामें लोग नाना प्रकारके पदार्थोंकी इच्छा करते हैं परन्तु इच्छा करनेसे ही उन्हें कुछ नहीं मिलता। इच्छा हो, प्रारब्धका संयोग हो और फिर प्रयत्न हो तब भौतिक पदार्थ मिलता है, पर भगवान्‌के लिये तो इच्छामात्रसे ही काम हो जाता है। इच्छा करनेपर जो प्रयत्न होता है वह प्रयत्न तो भगवान् स्वयं करा लेते हैं। साधक तो केवल निमित्तमात्र बनता है।

१३२-धन तो चाहनेपर भी प्रारब्धमें होता है तभी मिलता है, प्रारब्धमें नहीं होता तो नहीं मिलता। परन्तु भगवान् तो चाहनेपर अवश्य मिल जाते हैं, क्योंकि भगवान् धनकी भाँति जड नहीं हैं। जड धन हमारी चाहके बदलेमें वैसी चाह नहीं कर सकता, परन्तु भगवान् जो उनको चाहता है, उसको स्वयं चाहते हैं।

१३३-भक्तके चाहनेपर ही भगवान् उसे चाहते हैं।

१३४-साधनाके पथमें भगवान् पग-पगपर हमारी सहायता करते रहते हैं।

१३५-प्रत्येक साधकको अपनी परीक्षा अपने-आप करते रहना चाहिये। सूक्ष्मदृष्टिसे विचारकर देखनेपर अपने छिपे हुए दोष भी प्रत्यक्ष दीखने लग जाते हैं।

१३६-मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और इस लोक तथा परलोकके किसी भी पदार्थकी इच्छा साधकके मनमें न रहे, त्रैलोक्यके राज्यके लिये भी उसका

मन कभी न ललचाये।

१३७-स्वयं भगवान् प्रसन्न होकर भोग्य पदार्थ प्रदान करनेके लिये आग्रह करें तब भी न ले। इस बातके लिये यदि भगवान् रूठ जायँ तो भी परवा न करे। अपने स्वार्थकी बातें सुनते ही उसे अतिशय वैराग्य और उपरामता हो।

१३८-अपने हृदयकी गूढ़ और मार्मिक बातें हर किसीसे नहीं कहनी चाहिये।

१३९-गुप्त पाप और गुप्त पुण्य दोनोंका ही फल अधिक होता है। गुप्त साधनसे ईश्वरमें प्रेम बढ़ता है और चित्तमें शान्ति और प्रसन्नता होती है।

१४०-जो साधन बतलाया गया हो उसे कठिन न समझे। सदा ऐसा साहस रखे कि दुर्गुण-दुराचार आ ही कैसे सकते हैं? यदि हम सावधान रहेंगे तो चोर हमारे घरमें कैसे घुस सकता है?

१४१-खूब कोशिश करता हूँ यह मानना गलत है। कोशिश थोड़ी करते हो और उसको मान बहुत लेते हो।

१४२-साधकको इस बातका दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि कर्तव्यपरायण, भगवत्-शरणागत पुरुषके लिये कोई भी कार्य दुःसाध्य नहीं है। वह बड़ा-से-बड़ा काम भी सहजहीमें कर सकता है।

१४३-आत्मकल्याणकी यह शक्ति वास्तवमें प्रत्येक मनुष्यमें है। अपनी शक्तिका अभाव मानना मानो अपने-आपको नीचे गिराना है।

१४४-उत्साही पुरुषके लिये कष्टसाध्य कार्य भी सुखसाध्य हो जाता है।

१४५-विश्वास ही विषनाशक साधनकी लगनकी आधारभूमि है।

१४६-जिनकी साधनमें ऐसी दृढ़ निष्ठा होती है कि साध्य चाहे भले ही छूट जाय परन्तु साधन नहीं छूटना चाहिये, तो उनसे साधन तो छूटता ही नहीं, साध्य भी श्रद्धा और प्रेमके कारण उनके पीछे-पीछे उनके इशारेपर नाचता रहता है। साधन-निष्ठाकी ऐसी महिमा है।

१४७-परम शान्ति, परम आनन्द और परम प्रेमरूप परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें ही इस जीवनको बितानेकी तत्परताके साथ प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

१४८-वास्तविक साधन तो उसे ही समझना चाहिये जो परमात्माकी

प्राप्ति करानेवाला हो।

१४९-दुःखरूप संसारसे छूटनेका एक सर्वोत्तम उपाय है—परमात्माकी शरण लेकर विवेक और वैराग्ययुक्त बुद्धिसे दुःख, शोक, भय और चिन्ताका त्याग।

१५०-शरणागतिके भावको आदर्श रखकर जहाँतक बने भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगमें ही अपने समयको बितानेके लिये तत्परतासे प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

चेतावनी

१-मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य आत्यन्तिक आनन्दकी प्राप्ति है, आत्यन्तिक आनन्द परमात्मामें है, अतएव परमात्माकी प्राप्ति ही मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है।

२-आलस्यमें अबतक बहुत समय नष्ट हो चुका। अब तो सचेत होना चाहिये। मनुष्य-जीवनके एक भी अमूल्य क्षणको व्यर्थमें गँवाना उचित नहीं। गया हुआ समय किसी भी उपायसे वापिस नहीं मिल सकता। अतएव यथासाध्य शीघ्र ही सत्संगके द्वारा अपने कल्याणका मार्ग समझकर उसपर आरूढ हो जाना चाहिये।

३-मनुष्य-जन्मकी प्राप्तिसे कोई अत्यन्त ही उत्तम लाभ होना चाहिये। खाना, पीना, सोना, मैथुन करना आदि सांसारिक भोगजनित सुख तो पशु-कीटादितक नीच योनियोंमें भी मिल सकते हैं। यदि मनुष्य-जीवनकी आयु भी इसी सुखकी प्राप्तिमें चली गयी तो मनुष्य-जन्म पाकर हमने क्या किया?

४-सच्चे सुखका जब साधकको जरा-सा भी अनुभव मिल जाता है तब उसे उस सुखके सामने त्रिलोकीके राज्यका सुख भी अत्यन्त तुच्छ और नगण्य प्रतीत होने लगता है।

५-मनुष्य-जीवनका परम कर्तव्य सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म सर्वशक्तिमान् आनन्दकन्द भगवान्‌का साक्षात् करना ही है। यह इस लोक और परलोकमें

सबसे महान्, नित्य और सत्य सुख है। इसको छोड़कर अन्यान्य जितने भी सांसारिक सुख प्रतीत होते हैं, वे वास्तवमें सुख नहीं हैं केवल मोहसे उनमें सुखकी मिथ्या प्रतीति होती है। वास्तवमें वे सब दुःख ही हैं।

६-प्रथम तो जीवन है ही अल्प और जितना है वह भी अनिश्चित है। न मालूम मृत्यु कब आकर हमें मार दे। यदि आज ही मृत्यु आ जाय तो हमारे पास क्या साधन है जिससे हम उसका प्रतीकार कर सकें। यदि नहीं कर सकते तो हम तो अनाथकी तरह मारे जायँगे। इसलिये जबतक देहमें प्राण हैं और मृत्यु दूर है तबतक हमलोगोंको अपना समय ऊँचे-से-ऊँचे काममें लगाना चाहिये।

७-शरीर और कुटुम्बका पोषण एवं धनका संग्रह भी यदि सबके मङ्गलके कार्यमें लगे तभी करना चाहिये, यदि ये सब चीज हमें सच्चे सुखकी प्राप्तिमें सहायता नहीं पहुँचातीं तो इनका संग्रह करना मूर्खता नहीं तो और क्या है? देहपातके बाद धन, सम्पत्ति, कुटुम्बकी तो बात ही क्या, हमारी इस सुन्दर देहसे भी हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा और हम अपनी देह और सम्पत्ति आदिको अपने उद्देश्यके अनुसार अपने और संसारके कल्याणके काममें नहीं लगा सकेंगे। सम्पत्ति तो यहाँ ही रह जायगी और देह राख हो जायेगी, अतः वह किसी भी काममें नहीं आवेगी।

८-क्लेश, कर्म और सारे दुःखोंसे मुक्ति, अपार, अक्षय और सच्चे सुखकी प्राप्ति एवं पूर्ण ज्ञानका हेतु होनेके कारण यह मनुष्य-शरीर चौरासी लाख योनियोंमें सबसे बढ़कर है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, मुक्ति और शिक्षाकी प्रणाली सदासे बतलानेवाली होनेके कारण यह भारतभूमि सर्वोत्तम है। सारे मत-मतान्तरोंका उद्गमस्थान, विद्या, शिक्षा और सभ्यताका जन्मदाता तथा स्वार्थत्याग, ईश्वर-भक्ति, ज्ञान, क्षमा, दया आदि गुणोंका भण्डार, सत्य, तप, दान और परोपकार आदि सदाचारका सागर और सारे मत-मतान्तरोंका आदि और नित्य होनेके कारण वैदिक सनातनधर्म सर्वोत्तम धर्म है। केवल भगवान्‌के भजन और कीर्तनसे ही अल्पकालमें सहज ही कल्याण करनेवाला

होनेके कारण कलियुग सर्वयुगोंमें उत्तम युग है। ऐसे कलिकालमें सर्व वर्ण, आश्रम और जीवोंका पालन-पोषण करनेवाला होनेके कारण सर्व-आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम उत्तम है। यह सब कुछ प्राप्त होनेपर भी जिसने अपना आत्मोद्धार नहीं किया वह महान् पामर एवं मनुष्यरूपमें पशुके समान ही है।

९-सारे संयोग ईश्वरकी अहैतुकी और अपार दयासे ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि जीवोंकी संख्याके अनुसार यदि बारीका हिसाब लगाकर देखा जाय तो इस जीवको पुनः मनुष्य-शरीर लाखों, करोड़ों वर्षोंके बाद भी शायद ही मिले। वर्तमानमें मनुष्योंके आचरणोंकी ओर ध्यान देकर देखा जाय तो भी ऐसी ही बात प्रतीत होती है।

१०-ऐसे क्षणिक, अल्पायु, अनित्य और दुर्लभ शरीरको पाकर जो अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताते, जिनका तन, मन, धन, जन और सारा समय केवल सब लोगोंके कल्याणके लिये ही व्यतीत होता है वे ही जन धन्य हैं। वे देवताओंके लिये भी पूजनीय हैं। उन्हीं बुद्धिमानोंका जन्म सफल और धन्य है।

११-प्रथम तो मनुष्यका शरीर ही मिलना कठिन है और यदि वह मिल भी जाय तो भी भारतभूमिमें जन्म होना, कलियुगमें होना तथा वैदिक सनातनधर्म प्राप्त होना दुर्लभ है। इससे भी दुर्लभतर शास्त्रोंके तत्त्व और रहस्यके बतलानेवाले पुरुषोंका संग है। इसलिये जिन पुरुषोंको उपर्युक्त संयोग प्राप्त हो गये हैं, वे यदि परम शान्ति और परम आनन्ददायक परमात्माकी प्राप्तिसे वञ्चित रहें तो इससे बढ़कर उनकी मूढ़ता क्या होगी।

१२-क्षण-क्षणमें आयु नष्ट हो रही है, फिर ऐसा मौका मिलना असम्भव है। गया हुआ समय वापस नहीं मिल सकता, अतः ऐसे अमूल्य मनुष्य-जीवनको विषयभोगोंके भोगनेमें, मोह-मायामें, आलस्य और प्रमादमें व्यर्थ नहीं खोना चाहिये।

१३-दुनियामें ऐसी कोई भी योनि नहीं होगी जो हमलोगोंको न मिली हो।

१४-"जबतक यह शरीररूपी घर स्वस्थ है, वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियोंकी

शक्ति क्षीण नहीं हुई है और आयुका भी विशेष क्षय नहीं हुआ है, तभीतक विद्वान् पुरुषको अपने कल्याणके लिये महान् प्रयत्न कर लेना चाहिये, नहीं तो घरमें आग लग जानेपर कुँआ खोदनेका प्रयत्न करनेसे क्या होगा?''

१५-यह जीवन अल्प है और मृत्यु हमारी बाट देख रही है, बिना खबर दिये ही अचानक पहुँचनेवाली है। अतएव जबतक इस देहमें प्राण है, वृद्धावस्था दूर है, आपका इसपर अधिकार है तबतक ही जिस कामके लिये आये हैं उस अपने कर्तव्यका शीघ्रातिशीघ्र पालन कर लेना चाहिये।

१६-''महान् ऐश्वर्यशाली मान्धाता और युधिष्ठिर-सरीखे धर्मात्मा चक्रवर्ती राजा, हिरण्यकशिपु-जैसे दीर्घ आयुवाले, रावण और कुम्भकर्ण-जैसे बली और प्रतापी दैत्य, वरुण, कुबेर और यमराज-जैसे लोकपाल और इन्द्र-जैसे देवताओंके भी राजा संसारमें उत्पन्न हो-होकर इस शरीर और ऐश्वर्यको यहीं त्यागकर चले गये, किसीके साथ कुछ भी नहीं गया। फिर इस तन, धन, कुटुम्ब और ऐश्वर्य आदिके साथ अल्प आयुवाले हमलोगोंका तो सम्बन्ध ही कितना है।''

१७-हजारों-लाखों ब्रह्मा हो-होकर चले गये और करोड़ों इन्द्र होकर चले गये तथा हमलोगोंके इतने अनन्त जन्म हो चुके कि पृथ्वीके कणोंकी संख्या गिनी जा सकती है किन्तु जन्मोंकी संख्या नहीं गिनी जा सकती। और भी चाहे लाखों-करोड़ों कल्प बीत जायँ, बिना साधनके परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती और बिना परमात्माकी प्राप्तिके भटकना मिट नहीं सकता।

१८-चींटीसे लेकर देवराज इन्द्रकी योनितकको हमलोग भोग चुके हैं, किन्तु साधन न करनेके कारण हमलोग भटक रहे हैं और जबतक तत्पर होकर कल्याणके लिये साधन नहीं करेंगे तबतक भटकते ही रहेंगे।

१९-दुःख और विघ्नरूप समझते हुए नाशवान्, क्षणभंगुर, तुच्छ भौतिक सुखको लात मारकर परमात्माकी प्राप्तिरूप सच्चे सुखके लिये ही कटिबद्ध होकर प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार चेष्टा करनेवाले पुरुषको परमेश्वरकी दयासे उसकी प्राप्ति होनी सहज है।

२०-स्वप्नके राज्यको कोई बेचना चाहे तो एक पैसा भी उसका मूल्य नहीं मिलता, क्योंकि जागनेके बाद उस स्वप्नके राज्यका कोई नाम-निशान ही नहीं है, वैसे ही परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद इस संसार और सांसारिक सुखका नाम-निशान भी नहीं रहता। अतएव ऐसे अनन्त सुखको छोड़कर जो क्षणभंगुर, नाशवान् मिथ्या सुखके लिये चेष्टा करता है, उससे बढ़कर मूर्ख कौन है?

२१-जो मनुष्य अपने-आप दुःखका कारण बनता है वही मूर्ख है।

२२-विचारके द्वारा विषयोंमें जो केवल दुःख-ही-दुःख देखता है वही बुद्धिमान् है।

२३-सब बातें सोचकर हमको अपनी सब वस्तुएँ ऐसे काममें लगानी चाहिये जिससे हमें पश्चात्ताप न करना पड़े।

२४-मनुष्य-जन्म सबसे उत्तम एवं अत्यन्त दुर्लभ और भगवान्‌की विशेष कृपाका फल है। ऐसे अमूल्य जीवनको पाकर जो मनुष्य आलस्य, भोग, प्रमाद और दुराचारमें अपना समय बिता देता है वह महान् मूढ़ है। उसको घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

२५-समय बड़ा मूल्यवान् है। मनुष्यका शरीर मिल गया, यह भगवान्‌की बड़ी दया है। अब भी यदि भगवत्प्राप्तिसे वञ्चित रह गये तो हमारे समान मूर्ख कौन होगा। हमें अपने अमूल्य समयको अमूल्य कार्यमें ही लगाना चाहिये। भगवान्‌की स्मृति अमूल्य है। इस प्रकार नित्य विचार करना चाहिये।

२६-मृत्यु न मालूम कब आ जाय, वह प्रतिक्षण हमारे सामने मुँह बाये खड़ी है। अतः जबतक निरन्तर भजन न होने लगे तबतक बड़ा खतरा है।

२७-नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकता हुआ यह जीव जब अत्यन्त थक जाता है, तब भगवान् इसपर दया करके इसे मनुष्य-शरीर देते हैं और इस प्रकार उसे जन्म-मृत्युसे छूटनेका सुन्दर अवसर प्रदान करते हैं। परन्तु यह जीव कृतघ्नकी भाँति इस अवसरको हाथसे खो देता है और अन्तमें पछताता है। परन्तु फिर पछतानेसे क्या होता है?

२८-शाश्वत एवं निरतिशय सुखकी प्राप्ति तथा दुःखोंसे सदाके लिये

छुटकारा पा जाना ही जीवमात्रका ध्येय है और उसीके लिये मनुष्यको यत्नवान् होना चाहिये।

२९-यह मनुष्य-जन्म हमें ईश्वरोपासनाके लिये ही मिला है। संसारके भोग तो हम अन्य योनियोंमें भी भोग सकते हैं, परन्तु ईश्वरका ज्ञान प्राप्त करने तथा उनकी आराधना करनेका अधिकार तो हमें मनुष्ययोनिमें ही मिलता है।

३०-मनुष्योंमें भी जिनका द्विजाति-संस्कार हो चुका है अर्थात् जिन्हें वेदाध्ययन यानी वेदरूप ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करनेका अधिकार प्राप्त हो चुका है, वे लोग भी यदि नित्य-नियमित रूपसे ईश्वरोपासना न करें तो वे अपने अधिकारका दुरुपयोग करते हैं, उन्हें द्विजाति कहलानेका क्या अधिकार है?

३१-जो मनुष्य-जन्म पाकर भी भगवदुपासनासे विमुख रहते हैं, वे मरनेके बाद मनुष्ययोनिसे नीचे गिरा दिये जाते हैं और इस प्रकार भगवान्की दयासे जन्म-मरणके चक्करसे छूटनेका जो सुलभ साधन उन्हें प्राप्त हुआ था उसे अपनी मूर्खतासे खो बैठते हैं।

३२-यह मनुष्य-शरीर समस्त शुभ फलोंकी प्राप्तिका आदिकारण तथा अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी ईश्वरकी कृपासे हमारे लिये सुलभ हो गया है, वह इस संसाररूपी समुद्रसे पार होनेके लिये सुदृढ़ नौका है, जिसे गुरुरूप नाविक चलाता है और मैं (श्रीकृष्ण) वायुरूप होकर उसे आगे बढ़ानेमें सहायता देता हूँ, ऐसी सुन्दर नौकाको पाकर भी जो मनुष्य इस भवसागरको नहीं तरता, वह निश्चय ही आत्माका हनन करनेवाला अर्थात् पतन करनेवाला है।

३३-अपने हिताहितका विचार करके संसारमें कौन-सी वस्तु मेरे लिये ग्राह्य है और कौन-सी अग्राह्य है, इसका निर्णय कर ले और फिर दृढ़तापूर्वक उस निश्चयपर स्थित हो जाय। जो मार्ग उसे ठीक मालूम हो, उसपर दृढ़तापूर्वक आरूढ हो जाय और जो आचरण उसे निषिद्ध जँचे उन्हें छोड़नेकी प्राणपणसे चेष्टा करे, भूलकर भी उस ओर न जाय।

३४-हर एक मनुष्यको यह विचार करना चाहिये कि मैं कौन हूँ? यह संसार क्या है? इसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? मैं क्या कर रहा हूँ। मुझे

क्या करना चाहिये।

३५-कोई भी पदार्थ हो जो सत् होगा, उसका किसी भी प्रकार कभी विनाश नहीं होगा। उसपर कितनी ही चोटें लगें, वह सदा-सर्वदा अटल ही रहेगा। जो असत् पदार्थ है, उसके लिये आप कितना ही प्रयत्न करें, वह कभी रहनेका नहीं।

३६-एक परमेश्वर और उसके आज्ञापालनरूप धर्मके सिवा आपका इस लोक और परलोकमें कभी भी कोई साथी तथा सहायक नहीं है।

३७-भगवान्‌की प्राप्ति अपनी ख्यातिके लिये नहीं करनी है, वह तो हमारा परम ध्येय और आश्रय होना चाहिये, क्योंकि उस पदको प्राप्त होनेपर और कुछ भी पाना बाकी नहीं रहता। इसीको मुक्ति, परमपद और सच्चे सुखकी प्राप्ति कहते हैं।

३८-तुच्छ लौकिक ख्यातिकी इच्छा करना और उसके लिये अपना तन, मन, धन नष्ट करना कितनी मूर्खता है।

३९-यदि हमारा जीवन लौकिक दृष्टिसे कष्टोंमें बीता, हमें मान प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि जगह-जगह हम दुरदुराये गये, हमारा किसीने आदर नहीं किया, किसीने हमारी बात नहीं पूछी, किन्तु हमने अपने जीवनका सदुपयोग किया, जिस कार्यके लिये हम आये थे उस कार्यको बना लिया तो हम कृतकार्य हो गये, हमारा जीवन धन्य हो गया।

४०-यदि जीवनमें हमने बहुत-सी भोगसामग्री एकत्र कर ली, बहुत-सा मान-सम्मान प्राप्त किया, बहुत नाम कमाया, हजारों-लाखों रुपये, विपुल सम्पत्ति, हाथी-घोड़े, नौकर-चाकर तथा बहुत बड़े परिवारका संग्रह किया, किन्तु यदि जीवनका वास्तविक उद्देश्य सिद्ध नहीं किया तो हमारा किया-कराया सब व्यर्थ ही गया।

४१-यह मनुष्य-शरीर हमें बार-बार नहीं मिलनेका। ऐसे दुर्लभ अवसरको यदि हमने हाथसे खो दिया तो फिर सिवा पछतानेके और कुछ हाथ नहीं लगेगा।

४२-ऐसे देवदुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर भी यदि हमने अपना असली काम नहीं बनाया, जिसके लिये हम इस संसारमें आये हैं, तो हमसे बढ़कर मूर्ख कौन होगा? शास्त्रोंने तो ऐसे मनुष्यको कृतघ्नी और आत्महत्यारा बतलाया है।

४३-यह देवदुर्लभ देह हमें भगवान्‌की कृपासे ही प्राप्त हुई है। जब यह जीव चौरासी लाख योनियोंमें भटककर हैरान हो जाता है, तब भगवान् करुणा करके उसे मनुष्य-शरीर देते हैं।

४४-देवतालोग भी मनुष्य-योनिमें जन्म लेनेके लिये तरसते रहते हैं और इसीलिये इस मनुष्यदेहको क्षणभंगुर होनेपर भी देव-दुर्लभ कहा गया है।

४५-लाख प्रयत्न करनेपर भी इनमेंसे एक भी पदार्थ हमारे साथ नहीं जा सकेगा और मृत्यु हमारी एक-न-एक दिन निश्चित है। उसे हम एक क्षणके लिये भी नहीं टाल सकते। ऐसी दशामें यहाँके पदार्थोंसे सम्बन्ध जोड़ना, उन्हें अपना मानना और उनके बटोरनेमें आयु बिता देना कहाँतक बुद्धिमानी है, इसे हम स्वयं सोच सकते हैं।

४६-पूर्वजन्ममें हमारा जिन पदार्थोंसे अथवा व्यक्तियोंसे सम्बन्ध था, आज सम्बन्धकी बात तो अलग रही, उनकी हमें स्मृति भी नहीं है। उसी प्रकार इस जन्मके पदार्थोंसे हमारा मृत्यु हो जानेपर कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा, बल्कि हमें इनकी स्मृतितक नहीं रह जायगी।

४७-इस शरीरके साथ हमारा सम्बन्ध कब छूट जाय, पता नहीं। शरीर छूट जानेपर उन समस्त पदार्थोंसे, जिन्हें हम अपना माने हुए हैं, हमारा सम्बन्ध अपने-आप छूट जायगा।

४८-जिस मनुष्यजीवनको शास्त्रोंने देव-दुर्लभ बताया है, क्या उसकी चरितार्थता भोग भोगनेमें ही है?

४९-यह जीवन हमें सांसारिक भोग भोगनेके लिये नहीं मिला है।

५०-भगवान् कहते हैं—जल्दी चेतो, कालका भरोसा करके विषयभोगोंमें जरा भी मत फँसो। यह मत समझो कि शरीर सदा रहेगा, यह भी मत समझो

कि मुझे भूलकर तुम इसमें कहीं भी सुखकी तनिक छाया भी पा सकोगे। यह मनुष्य-शरीर तो मैंने तुम्हें विशेष दया करके दिया है अपनी ओर खींचकर परमानन्दरूप परमधाममें ले जानेके लिये। यह बड़ा ही दुर्लभ है। परन्तु यह है अनित्य, क्षणभंगुर और जो मुझको भूल जाता है, उसके लिये नितान्त सुखरहित भी। इसको प्राप्त होकर तो बस, निरन्तर प्रेमपूर्वक मेरा भजन ही करो। तभी तुम जीवनके परम लक्ष्यरूप मुझको प्राप्त करके धन्य हो सकोगे।

''अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।''

(गीता ९। ३३)

वस्तुतः यह हमारे लिये बड़े ही परिताप और लज्जाकी बात है कि इस प्रकार हम दयालु भगवान्‌की दयाका तिरस्कार कर अपने मानव-जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं। यही मानव-जीवनकी सबसे बड़ी विफलता है और यही मनुष्यकी सबसे बड़ी भूल है।

५१-मनुष्यको परमात्माकी प्राप्तिका जन्मसिद्ध अधिकार है तथापि अपनी अयोग्यता और विपरीताचरणके कारण उसे अपने अधिकारसे वञ्चित रहकर उलटा दण्डभोग करना पड़ता है। इससे अधिक उसका दुर्भाग्य और क्या होगा?

५२-भगवान्‌ने मनुष्य-शरीर देकर हमें मुक्तिका अधिकारी बना दिया, हम यदि अब प्रमाद और पाप करें तो हमारी बड़ी भारी मूर्खता है।

५३-भगवान्‌ने हमें मुक्तिका पासपोर्ट दे दिया है। अब जो कुछ कमी है वह केवल हमारी ही ओरसे है।

५४-यह कलिकाल पापोंका खजाना होनेपर भी आत्मोद्धारके लिये परम सहायक है।

५५-ऐसे उत्तम देश, जाति और धर्मको पाकर भी जो लोग नहीं चेतते हैं, उनको बहुत ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

मनुष्यका शरीर सम्पूर्ण शरीरोंसे उत्तम और मुक्तिदायक होनेके कारण अमूल्य माना गया है।

५६-परम दयालु ईश्वरकी कितनी भारी दया है, ईश्वरने यह मनुष्यका शरीर देकर हमें बहुत विलक्षण मौका दिया है। ऐसे अवसरको पाकर हमलोगोंको नहीं चूकना चाहिये।

५७-केवल भगवान्‌के पवित्र गुणगान करनेसे ही मनुष्य परमपदको प्राप्त हो जाता है। आत्मोद्धारके लिये साधन करनेमें प्रारब्ध भी बाधक नहीं है। इसलिये प्रारब्धको दोष देना व्यर्थ है और ईश्वरकी दयाका तो पार ही नहीं है।

५८-परम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये सतत प्रयत्न करना ही मनुष्य-जीवनके कर्तव्यका पालन करना है। इस कर्तव्य-पालनमें जो कुछ भी त्याग करना पड़े वही थोड़ा है।

५९-हमारा लक्ष्य होना चाहिये परमात्माकी प्राप्ति, क्योंकि परमात्मा ही एकमात्र परमसुख और शाश्वती शान्तिके केन्द्र हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ और सबसे बढ़कर प्राप्त करने योग्य परम वस्तु हैं, उनकी प्राप्तिमें ही जीवनकी पूर्ण और यथार्थ सफलता है।

६०-कौन जानता है, मृत्यु कब आ जायगी। दीर्घजीवनका पट्टा थोड़े ही है। इधर विष तो लगातार चढ़ ही रहा है। रातको ही मौत आ गयी तो फिर क्या होगा? अतएव इसी क्षणसे जग जाना चाहिये और लग जाना चाहिये पूरी लगनसे।

६१-बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह शास्त्रोंसे, शास्त्रोंके वाक्य न समझमें आवें तो किन्हीं भगवत्प्राप्त पुरुषसे, वैसे पुरुष न मिलें तो धर्मको जानकर धर्मका आचरण करनेवाले किसी पुरुषसे, वह भी न मिले तो अपनी समझसे जो धर्मको जाननेवाला जान पड़े, उसीसे पूछकर अपने कर्तव्यको जान ले।

६२-दुःख एवं शोकसे छूटनेके लिये मनुष्यको चाहिये कि वह अपना सारा समय परमात्माके तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके साधनमें ही लगावे और उसे प्राप्त

करके ही विश्राम ले।

६३-अर्जुन बहुत दृढ़ भक्त था। इतनी तेज भक्ति होकर भी थोड़ी कसर रहनेसे अर्जुनको इतना मोह हो गया। इस वास्ते मनुष्यको उचित है कि जबतक भगवत्प्राप्ति नहीं होवे तबतक साधन खूब तेजीसे करता जाय। जैसे जडभरत तथा अर्जुन-सरीखे पुरुषमें भी ऐसी बात बीत गयी तब अपनेको सोचना चाहिये कि उनके सामने हम क्या चीज हैं।

६४-जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती तबतक मनुष्य संसारमें अटक जावे तो कोई बड़ी बात नहीं है।

६५-भगवान् अपने भक्तोंपर मायाका जो प्रयोग करते हैं वह उनको चेतानेके लिये करते हैं। अर्जुनको भगवान्ने कहा कि मेरे सामने तुझे यह मोह कैसे प्राप्त हुआ; क्योंकि सूर्यके सामने अन्धकार नहीं आ सकता। तू मुझे नहीं जानता, इसीलिये मेरे सामने भी तुझे माया दबा रही है फिर मेरे बिना तेरी क्या दशा होगी।

६६-मनुष्यको विचार करना चाहिये कि भजन, ध्यान और सत्संगरूपी अमृतको छोड़कर एक क्षण भी व्यर्थ क्यों बिताया जाय। आनन्दमय भगवान्के स्मरण बिना जो समय व्यतीत होता है वही व्यर्थ है।

६७-बारम्बार विचार करना चाहिये कि आप किस लिये आये थे, यहाँ क्या करना चाहिये और आप क्या कर रहे हैं।

६८-एक भगवान्के बिना तुम्हारा और कोई भी नहीं है।

६९-संसारका चिन्तन भगवान्की प्राप्तिमें बहुत बड़ा बाधक एवं अपने लिये घातक है।

७०-अपने लोग कितने भाग्यवान् हैं कि सनातनधर्ममें अपना जन्म हुआ। संसारमें कितने ही मत पुनर्जन्मको नहीं मानते हैं। पृथ्वीपर लगभग तीन अरब मनुष्य हैं जिनमें कितनोंको तो मोक्षका विषय मालूम ही नहीं है। ऐसे लोगोंकी तो पशुओंकी माफिक योनि समझनी चाहिये, क्योंकि जैसे पशुओंके मुक्तिका साधन नहीं है वैसे ही उनके लिये भी नहीं है। इसलिये

हमें चेतना चाहिये तथा इसी जन्ममें अपना कल्याण कर लेना चाहिये, क्योंकि अगला जन्म यदि किसी अन्य मतमें हुआ तो बड़ी कठिनता होगी।

७१-भजन-ध्यान होनेमें साधन करनेवालोंके पास रुपया होनेकी अपेक्षा ऋण होना ज्यादा बाधक हैं।

७२-मनुष्यजन्मके समयकी कीमतके समान देवताओंके समयकी कीमत नहीं है। ऐसा मनुष्य-जन्म पाकर जो कल्याणको प्राप्त न करे उसे धिक्कार है।

७३-एक झूठ बोलनेसे सैकड़ों जन्म नरकमें पड़ना पड़ता है।

७४-जितना आराम है उससे लाख गुना ही दुःख है। दृष्टान्त—मनुष्यको एक जन्मका किया हुआ पाप ८४ लाख योनियोंमें भोगना पड़ता है तथा स्त्रीके साथ भोग करनेमें एक मिनटका आराम मालूम होता है, किंतु लाखों वर्ष नरकमें दुःख भोगना पड़ता है।

७५-श्रीराम, श्रीकृष्ण आदिके समय भी अपने लोग कुछ-न-कुछ थे ही। उस समय नहीं चेतनेके कारण अभीतक जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़े हुए हैं। अभी चेतना चाहिये, जिससे भविष्यमें जन्म-मरणसे छुटकारा मिल जावे।

७६-प्रारब्धकी बात यह है कि जितना शब्द बोलना है उतना ही बोल सकता है, जितना श्वास आना है उतना आ सकता है। इस बातको विचारकर मनुष्यको कामकी बात ही बोलनी चाहिये।

७७-यह सारा संसार एक दिन भस्म हो जानेवाला है।

७८-फुरसत न मिलनेका बहाना न करो। यहाँ किसीको फुरसत नहीं मिलती, परन्तु मरते समय सबको फुरसत मिल जाती है।

७९-समय बहुत तेजीसे बीतता चला जा रहा है, मृत्यु नजदीक है, उसे कोई एक पलके लिये भी नहीं टाल सकता। केवल भजन ही सार है। इसलिये तन-मनसे भजन करनेमें लग जाओ।

८०-शरीर तो छोड़ना ही पड़ेगा। इसलिये पहले ही इसमें अभिमान छोड़ देना अच्छा है।

८१-जबतक शरीर है उतने समयतक इससे काम ले लेना चाहिये। एक दिन तो अवश्य ही इसे खाली करना पड़ेगा।

८२-जबतक आपका शरीरपर अधिकार है अच्छी तरह शीघ्रतासे इससे काम ले लेना चाहिये। इसमेंसे भजन, ध्यान, सत्संगरूपी अमृत तो निकाल लेना चाहिये। जिससे बादमें पछताना न पड़े।

८३-भगवान्‌के भजन, ध्यान तथा सत्संगके बिना "मैं और मेरा" यह भाव नाश होना कठिन है। भगवान्‌का भजन बहुत कीमती है, यही तुम्हारे काम आवेगा।

८४-समयकी कीमत शीघ्र जान लेनी चाहिये। दिन बीते जा रहे हैं। गया समय फिर हाथ आता नहीं, ऐसा जानकर बड़ी शीघ्रतासे बहुत ऊँचे काममें लग जाना चाहिये और उसीमें समयको बिताना चाहिये। दिन बीत जायेंगे, मृत्युका समय समीप आ जायेगा, फिर कोई उपाय नहीं चलेगा। ऐसा जानकर असली काम बनानेके लिये जल्दी तैयार हो जाना चाहिये, फिर आनन्द-ही-आनन्द है।

८५-विचारकर देखनेसे मालूम होगा कि हमारा जन्म लेना व्यर्थ ही हुआ, केवल दस महीने माताको बोझ ही ढोना पड़ा। अब भी चेत जायँ, नहीं तो पीछे पछतानेसे कुछ भी नहीं बनेगा। अन्तमें भगवान्‌के भजन बिना कोई भी काम नहीं आवेगा। सब यहीं रह जायगा, शरीर भी साथ नहीं जायगा, फिर औरकी तो बात ही क्या है?

८६-सभी लोग स्वार्थमें डूबे पड़े हैं। चेतना चाहिये। मनुष्यके शरीरका असली फल प्राप्त करना चाहिये।

८७-समय बीता जा रहा है, गया हुआ समय किसी प्रकार भी लौटकर नहीं आता। ऐसा जानकर समयको अमूल्य काममें ही बिताना चाहिये। ऊँचे-से-ऊँचे काममें ही समय लगाना चाहिये। आप जिस कामके लिये संसारमें आये थे, उस कामको पहले पूरा करके ही फिर दूसरे कामको देखना चाहिये। एक भगवान्‌के बिना आपका सच्चा सुहृद् और कोई नहीं

है, ऐसा जानकर निरन्तर भजन-ध्यान करना चाहिये।

८८-एक श्रीभगवान्‌को छोड़कर और कोई भी तुम्हारा नहीं है। माता-पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, मकान, धन सभी नाशवान् हैं। इनका संग बहुत ही थोड़े दिनोंका है। इनमेंसे कुछ भी तुम्हारे साथ नहीं जायगा। और तो क्या, तुम्हारा यह शरीर भी यहीं रह जायगा।

८९-समय बीता जा रहा है। गया हुआ समय फिर हाथ नहीं आता। इसलिये जबतक स्वास्थ्य ठीक है, मृत्यु दूर है, तभीतक जो कुछ करना है सो कर लेना चाहिये। जिससे पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े।

९०-एक भगवान्‌को छोड़कर तुम्हारा और कोई भी नहीं है अतएव उस परमप्रेमी भगवान्‌को एक क्षणके लिये भी नहीं भूलना चाहिये।

९१-तन, धन आदि कोई भी वस्तु साथ नहीं जायगी, इन सबको देकर बदलेमें साथ जानेवाली वस्तुको खरीद लेना चाहिये।

९२-बड़े आश्चर्यकी बात है कि तप्तकुण्डमें पड़े हुए मनुष्यकी तरह लोग निरन्तर चिन्तारूपी अग्निमें जल रहे हैं, परन्तु इस दुःखको दूर करनेकी चेष्टा नहीं करते, इससे बढ़कर मूर्खता और क्या हो सकती है!

९३-संसारके किसी काममें चित्त अटका रह जानेसे फिरसे जन्म लेना पड़ता है, यों समझकर काम जल्दी ही निपटा लेना चाहिये कि जिससे फिर सदाके लिये आनन्द हो जाय।

९४-आप मालिकको किस लिये भूल रहे हैं? स्त्री, पुत्र और धन किस काम आवेंगे!

९५-प्राणोंके निकलनेके समय कोई सहायता नहीं कर सकेगा। साथ तो शरीर भी नहीं जायगा। जो कुछ किया जाता है वही साथ जाता है।

९६-भगवान्‌ने दया करके भजन, ध्यान भगवत्प्राप्तिके लिये मनुष्य-शरीर दिया है। सांसारिक भोग-विलासमें इसे नहीं खोना चाहिये।

९७-संसारके तुच्छ भोगोंकी ओर भूलकर भी मन न लगाना चाहिये संसारके भोगोंमें जो समय जाता है सो व्यर्थ जाता है।

९८-समय बहुत थोड़ा है, बहुत विचार-विचारकर इसे बिताना चाहिये। एक पलके साधनकी भी त्रुटि रह जायगी तो पुनः जन्म लेना पड़ेगा, अतएव ऐसी ही चेष्टा करनी चाहिये कि जिससे शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति हो जाय।

९९-शरीर मिथ्या और नाशवान् है एवं अपने साथ इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

१००-संसार, भोग और शरीरको सदा मृत्युके मुखमें देखना चाहिये।

१०१-समय बीता जा रहा है जो कुछ करना हो सो जल्दी कर लेना चाहिये। तुम किसलिये विलम्ब कर रहे हो? तुम्हें क्या जरूरत है? तुमको किसका दबाव है? तुम्हें नारायणको एक पलके लिये भी बिसारना नहीं चाहिये। अन्तमें एक नारायणको छोड़कर और कोई भी तुम्हारा नहीं होगा। इस असार संसारमें कुछ भी सार नहीं है। सब मायाकी टटिया है। इस प्रकार समझकर बुद्धिमान् तो इसके जालमें नहीं फँसता। परन्तु जो नहीं समझता सो इस मायारूपी ठगनीके मोहजालमें भोगरूपी दानेके लोभमें पड़कर फँस जाता है।

१०२-मनुष्य-जन्ममें ही आत्माका सुधार और उद्धार हो सकता है। अन्य किसी भी योनिमें नहीं हो सकता।

१०३-ये सब पदार्थ किस काम आवेंगे? एक दिन सबको मिट्टीमें मिल जाना है? जो कुछ ले सकें सो शीघ्र ही ले लेना चाहिये, अमूल्य श्वासोंको व्यर्थ गँवाना उचित नहीं है।

१०४-आपको वह काम कभी नहीं भूलना चाहिये, जिस कामके लिये आपका संसारमें आना हुआ है।

१०५-जो संसारका दास होगा वही संसारकी इच्छा करेगा। सांसारिक वस्तुओंकी इच्छा करनेवाला ही संसारमें जन्म लेता है। ऐसा पुरुष भगवान्के अन्तःकरण एवं मनका स्वामी नहीं हो सकता।

१०६-समय बीता जा रहा है। शीघ्र ही यह शरीर मिट्टीमें मिलनेवाला है। जब शरीर ही अपना नहीं तो रुपये एवं संसारके भोगोंकी तो बात ही क्या है?

१०७-श्रीभगवान्‌का विछोह आपसे कैसे सहा जाता है!

१०८-भगवान्‌के भजन-ध्यानके सिवा एक पल भी वृथा क्यों जाय? किसी भी बातके लिये एक पल भी बिना भजन-ध्यानके नहीं जाने देना चाहिये, क्योंकि सभी कुछ अनित्य है। अनित्यके लिये अपना अमूल्य समय हाथसे कभी न खोना चाहिये।

१०९-जब आपका शरीर छूट जायगा तब शरीर और रुपये किस काम आवेंगे? सब कुछ मिट्टीमें मिल जायगा।

११०-देर क्यों लगाते हैं? समय बीता जाता है। सब वस्तुओंको निश्चय ही छोड़ना पड़ेगा। पीछे पछतानेसे कुछ भी काम न होगा। संसारकी असारता पुराने खंडहरों और श्मशानोंके देखनेसे प्रत्यक्ष प्रतीत होती है।

१११-जबतक मृत्यु दूर है और शरीर आरोग्य है तथा अनुकूल परिस्थिति है उतने ही समयमें जो कुछ उत्तम काम करना हो सो बहुत शीघ्र कर लेना चाहिये, जिससे आगे चलकर पश्चात्ताप न करना पड़े।

११२-इस संसारमें एक भगवान्‌के सिवा और कोई भी तुम्हारा नहीं है माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, मकान, रुपये सभी नाशवान् हैं, इनका संग थोड़े ही दिनोंका है, इनमेंसे कोई भी पदार्थ तुम्हारे साथ नहीं जायगा।

११३-संसारमें चिन्ता करनेयोग्य कुछ भी नहीं है।

गीता

१-ब्रह्मचर्याश्रम, गीताका प्रचार, सत्संगका प्रचार यह काम बहुत अच्छा है। लोगोंको कहा भी जाता है। देशी कपड़ा, जूता, ब्रह्मचर्याश्रम, गीताजीका प्रचार—इनके करनेमें कितनी कठिनाई पड़ी है। अब आपको कितनी सुगमता है। आगे कलियुगमें समय बहुत खराब आ रहा है।

२-गीताके अध्ययनसे भी ईश्वरमें पूर्ण श्रद्धा हो सकती है।

३-श्रीगीताजीका अर्थ बहुत सरल है, उसका भी सार—"त्याग

भगवत्प्राप्ति है।''

४-हर समय भजन-ध्यान, श्रीगीताजीका अभ्यास करनेवालेसे भगवान् तथा महात्मा बहुत प्रसन्न रहते हैं।

५-मेरेको गीताजी बहुत प्यारी हैं, क्योंकि मेरे प्यारे प्रेमीकी बनायी हुई हैं। इनका मनन नित्य करना चाहिये।

६-जिस प्रकार दलालके साथ सैम्पुलकी गठरी ढोनेवाले मजदूरकी भी मालिकसे मुलाकात हो जाती है, उसी प्रकार जो श्रीगीताजीके प्रचारका थोड़ा भी काम निष्कामभावसे करता है, वह भी परमात्मप्राप्तिका पात्र बन जाता है।

७-सबसे ऊँचा काम श्रीगीताजीका प्रचार करना और श्रीपरमात्माके ध्यानका है। इनमें भी श्रीगीताजीका प्रचार एक नम्बर है।

८-जो बात सुनकर श्रीगीताजीका प्रचार करनेकी शक्ति और उत्साह बढ़े और ध्यानकी स्थितिकी वृद्धि हो, ऐसी प्रभावकी बातें सारे काम छोड़कर सुननी चाहिये।

९-श्रीगीताजीका प्रचार सम्पूर्ण जातियोंमें करना चाहिये।

१०-श्रीगीताजीका काम सत्संग छोड़कर भी करना उत्तम है।

११-श्रीगीताजीकी महिमा, श्रीगीताजीके प्रचारके बराबर लाभदायक दूसरा काम नहीं है, मेरे जो कुछ लाभ देखनेमें आता है, वह श्रीगीताजीका प्रभाव है।

१२-*गो, गीता, गङ्गा, गायत्री और गोविन्दका नाम। इन पाँचोंकी शरणसे पूरन होवे काम॥* एक-एककी शरणसे भी बेड़ा पार है। इनमें भी गीता और गोविन्दका नाम प्रधान है।

१३-गीता ज्ञानका प्रवाह है।

१४-भगवान्की प्राप्तिके लिये श्रीगीताजीका अर्थसहित अभ्यास करना चाहिये।

१५-गीताजीका श्लोक अर्थ, भाव, विषयसहित जो याद करता है, वह पहली कक्षा पास है।

१६-श्लोकोंका जो भाव है उसके अनुसार धारण करनेकी कोशिश करना दूसरी कक्षा पास है।

१७-गीताजीके अनुसार गुणोंको धारण कर लेना अवगुणको निकाल देना तीसरी भूमिका है।

१८-संसारकी उन्नतिके लिये विद्यालयोंद्वारा गीताका प्रचार करना चाहिये।

१९-गीताजीका अर्थसहित अभ्यास करनेसे बहुत लाभ है, क्योंकि अन्तकालमें याद रह जावे तो उद्धार हो जाय।

२०-गीतामें एक-एक शब्द हीरा, माणिक जड़ा है।

२१-मेरा मत क्या है, गीता। गीतासे विरुद्ध चाहे कुछ क्यों न हो मेरेको मान्य नहीं है।

२२-श्रुति, स्मृति सबका सार गीता है।

२३-श्रीगीताजीका घर-घरमें प्रचार करना चाहिये। रोम-रोममें रमानी चाहिये।

२४-गीता एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है। इसमें सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंका सार संग्रह किया गया है।

२५-गीता सर्वशास्त्रमयी है। गीतामें सारे शास्त्रोंका सार भरा हुआ है। उसे सारे शास्त्रोंका खजाना कहें तो भी अत्युक्ति न होगी।

२६-भगवद्गीता एक ऐसा अनुपमेय शास्त्र है जिसका एक भी शब्द सदुपदेशसे खाली नहीं है। गीतामें एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो रोचक कहा जा सके। उसमें जितनी बातें कही गयी हैं, वह सभी अक्षरशः यथार्थ हैं।

२७-श्रीमद्भगवद्गीता साक्षात् भगवान्‌की दिव्य वाणी है। इसकी महिमा अपार है, अपरिमित है। उसका यथार्थमें वर्णन कोई नहीं कर सकता।

२८-गीताका भलीभाँति ज्ञान हो जानेपर सब शास्त्रोंका तात्त्विक ज्ञान अपने-आप हो सकता है, उसके लिये अलग परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

२९-यह गीता उन्हीं भगवान्‌के मुखकमलसे निकली है जिनकी नाभिसे

कमल निकला। उस कमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्माजीसे चारों वेद प्रकट हुए और उनके आधारपर ही समस्त ऋषिगणोंने सम्पूर्ण शास्त्रोंकी रचना की है। अत: गीताको अच्छी प्रकार भावसहित समझकर धारण कर लेनेपर अन्य सब शास्त्रोंकी आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि सारे शास्त्रोंका विस्तार तो भगवान्‌की नाभिसे हुआ और गीता स्वयं भगवान्‌के मुखकमलसे कही गयी है।

३०-गीताकी रचना इतनी सरल और सुन्दर है कि थोड़ा अभ्यास करनेसे भी मनुष्य इसको सहज ही समझ सकता है, परन्तु इसका आशय इतना गूढ़ और गम्भीर है कि आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहनेपर भी उसका अन्त नहीं आता।

३१-भगवान्‌के गुण, प्रभाव, स्वरूप, मर्म और उपासनाका तथा कर्म एवं ज्ञानका वर्णन जिस प्रकार इस गीता-शास्त्रमें किया गया है वैसा अन्य ग्रन्थोंमें एक साथ मिलना कठिन है।

३२-एकाग्रचित्त होकर श्रद्धा-भक्तिसहित विचार करनेसे गीताके पद-पदमें परम रहस्य भरा हुआ प्रत्यक्ष प्रतीत होता है।

३३-सारे शास्त्रोंकी उत्पत्ति वेदोंसे हुई, वेदोंका प्राकट्य भगवान् ब्रह्माजीके मुखसे हुआ और ब्रह्माजी भगवान्‌के नाभिकमलसे उत्पन्न हुए। इस प्रकार शास्त्रों और भगवान्‌के बीचमें बहुत अधिक व्यवधान पड़ गया है, किन्तु गीता तो स्वयं भगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली है, इसलिये उसे सभी शास्त्रोंसे बढ़कर कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

३४-गीता गङ्गासे भी बढ़कर है। शास्त्रोंमें गङ्गास्नानका फल मुक्ति बतलाया गया है। परन्तु गङ्गामें स्नान करनेवाला स्वयं मुक्त हो सकता है। वह दूसरोंको तारनेकी सामर्थ्य नहीं रखता। किन्तु गीतारूपी गङ्गामें गोते लगानेवाला स्वयं तो मुक्त होता ही है, वह दूसरोंको भी तारनेमें समर्थ हो जाता है।

३५-गङ्गा तो भगवान्‌के चरणोंसे उत्पन्न हुई और गीता साक्षात् भगवान् नारायणके मुखारविन्दसे निकली है।

३६-गङ्गा तो जो उसमें आकर स्नान करता है उसीको मुक्त करती है, परन्तु गीता तो घर-घरमें जाकर उन्हें मुक्तिका मार्ग दिखलाती है।

३७-गीता गायत्रीसे बढ़कर है, गायत्री-जपसे मनुष्यकी मुक्ति होती है, यह बात ठीक है, किन्तु गायत्री-जप करनेवाला भी स्वयं ही मुक्त होता है, पर गीताका अभ्यास करनेवाला तो तरन-तारन बन जाता है। जब मुक्तिके दाता स्वयं भगवान् ही उसके हो जाते हैं, तब मुक्तिकी तो बात ही क्या है। मुक्ति उसकी चरणधूलिमें निवास करती है। मुक्तिका तो वह सत्र खोल देता है।

३८-वास्तवमें गीताके समान संसारमें यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, संयम और उपवास आदि कुछ भी नहीं है।

३९-गीताको हम स्वयं भगवान्‌से भी बढ़कर कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रीँल्लोकान् पालयाम्यहम्॥

(वाराहपुराण)

४०-गीता भगवान्‌का प्रधान रहस्यमय आदेश है। ऐसी दशामें उसका पालन करनेवाला उन्हें प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो, इसमें आश्चर्य ही क्या है।

४१-गीता भगवान्‌का श्वास है, हृदय है और भगवान्‌की वाङ्मयी मूर्ति है।

४२-गीतामें ही भगवान् मुक्तकण्ठसे यह घोषणा करते हैं कि जो कोई मेरी इस गीतारूप आज्ञाका पालन करेगा वह निःसंदेह मुक्त हो जायगा।

४३-जिसके हृदयमें, वाणीमें, शरीरमें तथा समस्त इन्द्रियों एवं उनकी क्रियाओंमें गीता रम गयी है वह पुरुष साक्षात् गीताकी मूर्ति है। उसके दर्शन, स्पर्श, भाषण एवं चिन्तनसे भी दूसरे मनुष्य परम पवित्र बन जाते हैं।

४४-गीता ज्ञानका अथाह समुद्र है, इसके अंदर ज्ञानका अनन्त भण्डार भरा पड़ा है। इसका तत्त्व समझानेमें बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् और तत्त्वालोचक महात्माओंकी वाणी भी कुण्ठित हो जाती है, क्योंकि इसका पूर्ण रहस्य भगवान् श्रीकृष्ण ही जानते हैं।

४५-गीता अनन्त भावोंका अथाह समुद्र है। रत्नाकरमें गहरा गोता लगानेपर जैसे रत्नोंकी प्राप्ति होती है, वैसे ही इस गीता-सागरमें गहरी डुबकी लगानेसे जिज्ञासुओंको नित्य नूतन विलक्षण भाव-रत्न-राशिकी उपलब्धि होती है।

४६-जैसे वेद परमात्माका निःश्वास है इसी प्रकार गीता भी साक्षात् भगवान्का वचन होनेसे भगवत्-स्वरूप ही है। अतएव भगवान्की भाँति गीताका स्वरूप भी भक्तोंको अपनी भावनाके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारसे भासता है।

४७-कृपासिन्धु भगवान्ने अपने प्रिय सखा भक्त अर्जुनको निमित्त बनाकर समस्त संसारके कल्याणार्थ इस अद्भुत गीता-शास्त्रका उपदेश किया है।

४८-किसी एक ऐसे ग्रन्थका अवलम्बन करना उत्तम है जो सरलताके साथ मनुष्यको इस पावन पथपर ला सकता है। मेरी समझसे ऐसा पावन ग्रन्थ "श्रीमद्भगवद्गीता" है।

४९-बहुत थोड़ेसे सरल शब्दोंमें कठिन-से-कठिन सिद्धान्तोंको समझानेवाला, सब प्रकारके अधिकारियोंको उनके अधिकारानुसार उपयोगी मार्ग बतलानेवाला, सच्चे धर्मका पथप्रदर्शक, पक्षपात और स्वार्थसे रहित उपदेशोंके अपूर्व संग्रहका यह एक ही सार्वभौम महान् ग्रन्थ गीता है।

५०-गीता भगवान्के ही श्रीमुखका वचनामृत है। गीतामें जितने वचन "**श्रीभगवानुवाच**" के नामसे हैं उनमें कुछ तो जो श्रुतियोंके प्रायः ज्यों-के-त्यों वचन हैं। अर्जुनको श्लोकरूपमें ही कहे गये थे और अवशेष संवाद बोलचालकी भाषामें हुआ था जिसको भगवान् श्रीव्यासदेवने श्लोकोंका रूप दे दिया।

५१-गीताके समान संसारमें कोई ग्रन्थ नहीं है। सभी मत इसकी उत्कृष्टता स्वीकार करते हैं, अतः हमें गीताका इतना अभ्यास करना चाहिये कि हमारी आत्मा गीतामय हो जाय।

५२-गीताका अर्थ समझनेके लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये। गीताका

खूब अभ्यास करे, जिस समय पाठ करे उस समय अर्थपर खूब ध्यान रखे। पहले अर्थ पढ़ ले, पीछे श्लोक पढ़े।

५३-गीताके श्लोकोंमें कोई नयी बात जान पड़े तो उसे कण्ठस्थ कर ले।

जिन पुरुषोंको धर्मके विस्तृत ग्रन्थोंको देखनेका पूरा समय नहीं मिलता है, उनको चाहिये कि वे गीताका अर्थसहित अध्ययन अवश्य ही करें और उसके उपदेशोंको पालन करनेमें तत्पर हो जायँ।

५४-गीतामें सैकड़ों ऐसे श्लोक हैं जिनमेंसे एकको भी पूर्णतया धारण करनेसे मनुष्य मुक्त हो जाता है फिर सम्पूर्ण गीताकी तो बात ही क्या है। जैसे गीता अध्याय २। ७१; ३। ३०; ४। ३४, ५। २९; ६। ४७; ७। १४; ८। १४; ९। ३२; १०। ९-१०; ११। ५४; ५५; १२। ८; १३। १०; १४। १९; २६; १५। १९; १६। १; १७। १६; १८। ६५-६६ इत्यादि।

५५-गीताधर्मके प्रचारमें सबको यत्नवान् होना चाहिये, इससे सबको आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति हो सकती है। यही एक सरल, सहज और मुख्य उपाय है।

५६-गीता-प्रचारके लिये भगवान्ने किसी देश, काल, जाति और व्यक्तिविशेषके लिये रुकावट नहीं की है, वरं अपने भक्तोंमें गीताका प्रचार करनेवालेको सबसे बढ़कर अपना प्रेमी बतलाया है।

५७-सभी देशोंकी सभी जातियोंमें गीताशास्त्रका प्रचार बड़े जोरके साथ करना चाहिये।

५८-केवल एक गीताके प्रचारसे ही पृथ्वीके मनुष्यमात्रका उद्धार हो सकता है।

५९-गीतापाठ करनेवालोंमें सदाचार, श्रद्धा, भक्ति और प्रेमका होना आवश्यक है, क्योंकि भगवान्ने अश्रद्धालु, सुनना न चाहनेवाले, आचरणभ्रष्ट, भक्तिहीन मनुष्योंमें इसके प्रचारका निषेध किया है। (गीता १८। ६७)

६०-गीतामें बतलाये हुए साधनोंके अनुसार आचरण करनेका अधिकार मनुष्यमात्रको है। जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णका यह उपदेश समस्त मानव-

जातिके लिये है—किसी खास वर्ण अथवा किसी खास आश्रमके लिये नहीं। यही गीताकी विशेषता है।

६१-मुक्तिमें मनुष्यमात्रका अधिकार है और गीता मुक्ति-मार्ग बतलानेवाला एक प्रधान ग्रन्थ है, इसलिये परमेश्वरमें भक्ति और श्रद्धा रखनेवाले सभी आस्तिक मनुष्योंका इसमें अधिकार है।

६२-गीतारूपी दुग्धामृत अर्जुनरूप वत्सके व्याजसे ही विश्वको मिला, परन्तु वह इतना सार्वभौम और सुमधुर है कि सभी देश, सभी जाति, सभी वर्ण और सभी आश्रमके लोग उसका अबाधितरूपसे पान कर अमरत्व प्राप्त कर सकते हैं।

६३-जैसे भगवत्प्राप्तिमें सबका अधिकार है वैसे ही गीताके भी सभी अधिकारी हैं।

६४-गीता सभी वर्णाश्रमवालोंके लिये है। सभी अपने-अपने वर्णाश्रमके कर्मोंको करते हुए सांख्य या योग—दोनोंमेंसे किसी एक निष्ठाके द्वारा अधिकारानुसार साधन कर सकते हैं।

६५-गीतामें कर्म, भक्ति और ज्ञान—तीनों सिद्धान्तोंकी ही अपनी-अपनी जगह प्रधानता है।

६६-ज्ञान, कर्म और भक्ति—तीनोंका ही सम्यक्तया प्रतिपादन हुआ है।

६७-गीता अधिकारी-भेदसे ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनों निष्ठाओंको मुक्तिके दो स्वतन्त्र साधन मानती है।

६८-गीता वर्णाश्रमको मानती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्ण अपने-अपने स्वाभाविक वर्ण-धर्मका स्वार्थरहित निष्काम-भावसे भगवत्प्रीत्यर्थ आचरण करें तो उनकी मुक्ति होना गीताको सर्वथा मान्य है।

६९-गीता जन्म-कर्म दोनोंसे वर्ण मानती है। "**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः**" (४। १३)

७०-गीता मूर्तिपूजाको मानती है, अध्याय ९। २६ और ९। ३४ के

श्लोकसे यह प्रमाणित है।

७१-गीता वेदोंको मानती है और उनको बहुत ऊँची दृष्टिसे देखती है।

गीतामें जितने सद्भाव यानी उत्तम गुण बतलाये गये हैं उन सबमें एक ऐसा गुण है जिस एकसे ही महापुरुषकी पहचान हो जाती है, उसका नाम है "समता"।

७२-व्यवहारमें परमार्थके प्रयोगकी अद्भुत कला गीतामें बतलायी गयी है।

७३-जिनको जो विषय प्रिय है, जो सिद्धान्त मान्य है वही गीतामें भासने लगता है।

७४-श्रीमद्भगवद्गीताकी ध्वजा फहरा रही है, फिर हमारी अवनति क्यों होनी चाहिये।

७५-गीतोक्त ज्ञानकी उपलब्धि हो जानेपर और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता।

भगवत्तत्त्व

१-ईश्वरका तात्त्विक स्वरूप अलौकिक है, परम रहस्यमय है, गुह्यतम है। जिन्हें वह प्राप्त है वे ही उसे जानते हैं।

२-भगवान्‌में कोई भी गुण नहीं, वे गुणातीत हैं, बुरे-भले सभी गुण उनमें हैं और उनमें केवल सद्गुण हैं, दुर्गुण हैं ही नहीं। ये तीनों ही बातें भगवान्‌के लिये कही जा सकती हैं।

३-आदिपुरुष विष्णु सर्वसमर्थ, सर्वगुणसम्पन्न हैं। सत्त्वगुणकी मूर्ति हैं। सात्त्विक तेज, प्रभाव, सामर्थ्य, विभूति आदिसे विभूषित हैं। शुद्ध सत्त्व ही उनका स्वरूप है।

४-भगवान्‌के स्वरूपको भगवान् ही जानते हैं, तत्त्वज्ञ लोग संकेतके रूपमें भगवान्‌के स्वरूपका कुछ वर्णन कर सकते हैं, परन्तु जो कुछ जानने और वर्णन करनेमें आता है, वास्तवमें भगवान् उससे और भी विलक्षण हैं।

५-यह समस्त जगत् भगवान्‌के एक अंशमें स्थित है, भगवान् ही इस

जगत्के रूपमें अभिव्यक्त हो रहे हैं।

६-इस चराचर जगत्के सहित जो परमात्माका स्वरूप है वह सगुण है, इससे अतीत जहाँ चराचर संसार नहीं है जो केवल है, वह गुणातीत है।

७-"भगवान् चाहे जैसे, चाहे जब, चाहे जहाँ, चाहे जिस रूपमें प्रकट हो सकते हैं।"

८-"निराकार-साकार सब एक ही तत्त्व है।"

९-देवर्षि-नारदने भी भक्तिसूत्रमें कहा है—"**सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा**" उस परमेश्वरमें अतिशय प्रेमरूपता ही भक्ति है। "**अमृतस्वरूपा च**" और वह अमृतरूप है।

१०-इस प्रकार और भी बहुत-से वचन मिलते हैं। इनसे यही मालूम होता है कि ईश्वरमें जो परम प्रेम है, वही अमृत है, वही असली भक्ति है। यदि कहें कि व्याकरणसे भक्ति शब्दका अर्थ सेवा होता है, क्योंकि भक्ति शब्द "**भज सेवायाम्**" धातुसे बनता है तो यह कहना भी ठीक ही है। प्रेम सेवाका फल है और भक्तिके साधनोंकी अन्तिम सीमा है। जैसे वृक्षकी पूर्णता और गौरव फल आनेपर ही है।

११-जैसें आकाश निराकार है। आकाशमें कहीं कोई आकार नहीं परन्तु कभी-कभी आकाशमें बादलके टुकड़े दीख पड़ते हैं, वे बादलके टुकड़े आकाशमें ही उत्पन्न होते हैं, उसीमें दीख पड़ते हैं और अन्तमें उसी आकाशमें शान्त हो जाते हैं। आकाशकी वास्तविक स्थितिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता, परन्तु आकाशका जितना स्थान बादलोंसे आवृत होता है उतने अंशमें उसका एक विशेष रूप दीखता है और उसमें वृष्टि आदिकी क्रिया भी होती है।

१२-इसी प्रकार एक ही अनन्त शुद्ध ब्रह्ममें जितना अंश मायासे आच्छादित दीखता है उतने अंशका नाम सगुण ईश्वर है, वास्तवमें यह सगुण ईश्वर शुद्ध ब्रह्मसे कभी कोई दूसरी भिन्न वस्तु नहीं, किन्तु मायाके कारण भिन्न दीखनेसे सगुण ईश्वरको लोग भिन्न मानते हैं। यही भिन्न रूपसे दीख पड़नेवाला सगुण चैतन्य, सृष्टिकर्ता ईश्वर है, इसीको आदिपुरुष, पुरुषोत्तम

और मायाविशिष्ट ईश्वर कहते हैं।

१३-जिस प्रकार सर्वत्र फैले हुए बिजलीके तारमें बिजलीका प्रवाह सदा सर्वव्यापक रहता है वैसे ही भगवान् न दीखनेपर भी सदा, सर्वत्र विराजमान हैं।

१४-जैसे अग्नि सर्वत्र व्याप्त है पर चेष्टा करनेसे चाहे जहाँ प्रज्वलित हो जाती है और अन्तमें विलीन हो जाती है, परन्तु न दीखनेपर भी वहाँ वस्तुतः अग्निका अभाव नहीं होता। उसी प्रकार भगवान् भी सर्वत्र व्याप्त होते हुए प्रकट और अन्तर्धान हो जाते हैं।

१५-अग्नि निराकाररूपसे सर्वत्र व्याप्त है, इसीलिये उसे चकमक पत्थर तथा दियासलाई आदिसे चाहे जहाँ प्रकट किया जा सकता है और जिस कालमें उसे एक जगह प्रकट किया जाता है उस कालमें अन्यत्र उसका अभाव नहीं हो जाता, बल्कि एक ही कालमें वह कई जगह प्रकट होती देखी जाती है और जहाँ भी प्रकट होती है, उसमें पूरी शक्ति रहती है। इसी प्रकार भगवान् भी निराकाररूपसे सर्वत्र व्याप्त होते हुए ही किसी देशविशेषमें अपनी पूरी भगवत्ताके साथ प्रकट हो जाते हैं।

१६-अविनाशी निर्विकार परमात्मा जगत्के उद्धारके लिये भक्तोंके प्रेमवश अपनी इच्छासे अपने-आप अवतीर्ण होते हैं। वे प्रेममय हैं। उनकी प्रत्येक क्रिया प्रेम और दयासे ओतप्रोत है। वे जिनका संहार करते हैं, उनका भी उद्धार ही करते हैं। उनका संहार भी परम प्रेमका ही उपहार है।

१७-जगत्का कल्याण करनेके लिये ही भगवान् इस प्रकार मनुष्यादिके रूपमें लोगोंके सामने प्रकट होते हैं, उनका वरदविग्रह प्राकृत उपादानोंसे बना नहीं होता, वह दिव्य, चिन्मय, प्रकाशमान, शुद्ध और अलौकिक होता है, उनके जन्ममें गुण और कर्म संस्कार-हेतु नहीं होते, वे मायाके वशमें होकर जन्म धारण नहीं करते, किन्तु अपनी प्रकृतिके अधिष्ठाता होकर योगमायासे मनुष्यादिके रूपमें केवल लोगोंपर दया करके ही प्रकट होते हैं।

१८-जिस समय भगवान् अपने भक्तपर दया करके उसको अपना तत्त्व और रहस्य समझानेके लिये ऐसे रूपको प्रकट करते हैं उस समय भी उसके

दर्शन वही मनुष्य कर सकता है जिनको वैसे रूपका दर्शन करनेकी दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है, जो भगवान्‌का परम भक्त होता है और जिसको भगवान् वैसा रूप दिखाना चाहते हैं। दूसरा कोई किसी भी उपायसे नहीं देख सकता।

१९-भगवान्‌का अवतारविग्रह चिन्मय सच्चिदानन्दमय होता है, इसलिये वह अनामय और दिव्य है।

२०-भगवान्‌की शारीरिक धातु चिन्मय और दिव्य है, प्राकृतिक नहीं है। देखनेमें नरवपुधृत नरलीला करते हुए प्राकृतिककी-ज्यों दीख पड़ते हैं।

२१-भगवान्‌का अवतार न तो कर्मसे प्रेरित होकर होता है, न उनका शरीर पाञ्चभौतिक अथवा मायिक होता है। उनका जन्म और उनके कर्म दोनों ही दिव्य—अलौकिक होते हैं।

२२-भगवान् प्रकृतिको वशमें करके अपनी स्वतन्त्र इच्छासे जन्म लेते हैं और लीला-कार्य समाप्त हो जानेपर पुनः बेरोक-टोक अपने धामको वापस चले आते हैं।

२३-भगवान् तो सदा-सर्वदा सभी प्रकारसे पूर्णकाम हैं (३। २२), तथापि दयामयस्वरूप होनेके कारण वे स्वाभाविक ही सबपर अनुग्रह करके सबके हितकी व्यवस्था करते हैं और बार-बार अवतीर्ण होकर नाना प्रकारके ऐसे विचित्र चरित्र करते हैं जिन्हें गा-गाकर ही लोग तर जाते हैं।

२४-भगवान्‌के सारे कर्म लीलामय होते हैं। उनके कर्मोंसे लोगोंको नीति, धर्म और प्रेमका उपदेश मिलता रहता है। भगवान् सृष्टि-रचना और अवतार-लीलादि जितने भी कर्म करते हैं, उनमें उनका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं है, केवल लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही वे मनुष्यादि अवतारोंमें नाना प्रकारके कर्म करते हैं।

२५-अपने प्रेमी भक्तोंको अपनी दिव्य लीलाओंका आस्वादन करानेके लिये इस पृथ्वीपर साकाररूपसे प्रकट होते हैं। उन अवतारोंमें धारण किये हुए रूपका तथा उनके गुण, प्रभाव, नाम, माहात्म्य और दिव्य कर्मोंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करके सब लोग सहज ही संसार-समुद्रसे पार

हो जाते हैं। यह काम बिना अवतारके नहीं हो सकता। इसीलिये भगवान् अवतार लेते हैं।

२६-"वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वगुणसम्पन्न, सर्वसमर्थ, सर्वसाक्षी, सत्, चित्, आनन्दघन परमात्मा ही अपनी लीलासे भक्तोंके उद्धारके लिये भिन्न-भिन्न स्वरूप धारण करके अनेक लीलाएँ करते हैं।"

२७-सर्वशक्तिमान् पूर्णब्रह्म परमेश्वर वास्तवमें जन्म और मृत्युसे सर्वथा अतीत हैं। उनका जन्म जीवोंकी भाँति नहीं है। वे अपने भक्तोंपर अनुग्रह करके अपनी दिव्य लीलाओंके द्वारा उनके मनको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये, दर्शन, स्पर्श और भाषणादिके द्वारा उनको सुख पहुँचानेके लिये, संसारमें अपनी दिव्य कीर्ति फैलाकर उसके श्रवण, कीर्तन और स्मरणद्वारा लोगोंके पापोंका नाश करनेके लिये तथा जगत्में पापाचारियोंका विनाश करके धर्मकी स्थापना करनेके लिये जन्म-धारणकी केवल लीलामात्र करते हैं।

२८-ईश्वरीय शक्ति भी बड़ी विलक्षण है, वह सब जगह सब कुछ करनेमें सर्वथा समर्थ है। यही तो उसका ईश्वरत्व और विराट् स्वरूप है।

२९-प्रभुके संकल्पसे संसार होता है और उस संकल्पके न रहनेसे यह ढह जाता है। प्रभुके संकल्पमात्रसे असंख्य जन्मोंके महापापीके भी सारे पाप एक क्षणमें भस्म हो जाते हैं। प्रभुके संकल्पसे क्षणभरमें सारे संसारका उद्धार हो सकता है। संकल्प क्या प्रभुके संकेतमात्रसे, एक इशारेसे ब्रह्माण्डका उद्धार हो सकता है।

३०-भगवान् यदि अपनेको छिपाना चाहें तो किसकी शक्ति है जो उन्हें पहचान सके। वे स्वयं ही जब कृपा करके जिसको अपनी पहचान कराते हैं वही उन्हें पहचान पाता है, दूसरा नहीं—*"सो जानइ जेहि देहु जनाई।"*

३१-भक्तकी भावनाके अनुसार ही भगवान् बन जाते हैं।

३२-ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ परमात्मा न हों और संसारमें ऐसी भी कोई जगह नहीं कि जहाँ परमात्माकी माया न हो। जहाँ देश-काल हैं वहीं माया है। मायारूप सामग्रीको लेकर परमात्मा चाहे जहाँ प्रकट हो सकते हैं।

३३-सगुण साकारको तो हम अपने नेत्रोंके सामने प्रकट भी देख सकते हैं।

३४-जो कुछ भास रहा है वह सब मायामात्र है। मायाके अधीश्वर भगवान्‌को इसका बाजीगर समझकर, बाजीगरके झमूरेकी तरह संसारकी वस्तुओंको लेकर खेल करना चाहिये।

३५-सब जगह एक सच्चिदानन्दघन ही समानभावसे स्थित है। संसारमें जो कुछ दृश्य वस्तुएँ भासती हैं वह हैं ही नहीं, सब जगह भगवान् ही हैं। यदि ऐसा अनुभव हो जाय तो सब जगह भगवान् ही भासने लगें।

३६-जो भगवान्‌के मर्मको जान लेता है, वह कभी मोहित नहीं होता।

३७-संसार कोई वस्तु नहीं है, वास्तवमें जो कुछ है सो श्रीसच्चिदानन्दघन ही है।

३८-एक नारायणदेवके सिवा और कुछ भी नहीं है।

३९-जो भास रहा है सो है ही नहीं और जो है सो भासता नहीं, क्योंकि भगवान्‌का गुणातीत स्वरूप इन्द्रियोंका विषय नहीं है।

४०-भगवान् तो सब जगह उपस्थित हैं, जबतक तुम्हें विश्वास नहीं होता, तभीतक वे छिप रहे हैं।

४१-जहाँपर मन जाय वहींपर उसे परमात्माके स्वरूपमें लगाना चाहिये।

४२-जिसमें मन जाय उसीमें परमात्माका स्वरूप देखना चाहिये।

४३-जिसमें अधिक प्रीति हो, उसीमें भगवान्‌की भावना करके उसका ध्यान करे।

४४-सभी जगह एक नारायण ही पूर्ण हो रहे हैं, नारायणके सिवा और कुछ है ही नहीं।

४५-एक परमेश्वर ही समभावसे सब जगह पूर्ण हो रहा है।

४६-श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने गीतामें कई जगह बहुत गोपनीय बातें कही हैं मानो पहले किसीको नहीं कही हो (११। ३२—३४; १८। ६४) गीताजी देखकर लोगोंके मनमें भान आता है कि उनके सामने १८ अक्षौहिणी सेना मर गयी, क्योंकि उन लोगोंने उनका प्रभाव नहीं जाना, वह लोग बड़े मूर्ख थे किंतु यह बात समझनी अपनी भूल है। अब भी यदि श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज गीता ४। ७ के अनुसार आ जायँ तो अपनेमें भी यह बात होनी

कोई बड़ी बात नहीं।

४७-जिस मनुष्यको भगवान्‌के नाम-स्मरणके साथ-साथ यह दृढ़ विश्वास होगा कि भगवान् सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वव्यापी हैं, परम न्यायकारी हैं, वह कोई भी ऐसा कार्य कैसे कर सकता है जो भगवान्‌की आज्ञाके विरुद्ध हो?

४८-समुद्रके जलमें नमक, काठमें अग्नि और दूधमें घी जिस प्रकार रम रहा है उसी प्रकार परमात्मा सबमें रम रहा है। सब जगह भगवान् प्राप्त हो रहे हैं। ऐसा मानना चाहिये। यह मानना जप, ध्यान और सत्संगकी अधिकतासे सम्भव है।

४९-परमात्माके प्रभावको जाननेवालोंके सामने मायाकी शक्ति कुछ भी नहीं है।

५०-भगवान् सब जगह विराजमान हैं। कहीं दूरसे उनको आना नहीं पड़ता। उत्कण्ठा होनेपर वे सब जगह दीखने लग जाते हैं।

५१-हम विषय-विमूढ़ जीव भगवान्‌की लीला और उनके कार्योंको क्या समझें?

५२-ईश्वरके सम्बन्धमें इतनी बातें अवश्य ही दृढ़तापूर्वक हृदयमें धारण कर लेनी चाहिये कि ईश्वर है, सर्वत्र है, सर्वान्तर्यामी है, सर्वशक्तिमान् है, सर्वव्यापी है, सर्वदिव्य गुण-सम्पन्न है, सर्वज्ञ है, सनातन है, नित्य है, परम प्रेमी है, परम सुहृद् है, परम आत्मीय है और परम गुरु है। इन गुणोंमें उससे बढ़कर या उसकी जोड़ीका दूसरा जगत्‌में न कोई हुआ, न है और न हो सकता है।

५३-अग्नितत्त्व कारणरूपसे अर्थात् परमाणुरूपसे निराकार है और लोकमें समभावसे सभी जगह अप्रकटरूपेण व्याप्त है। लकड़ियोंके मथनेसे, चकमक पत्थरसे और दियासलाईकी रगड़से अथवा अन्य साधनोंद्वारा चेष्टा करनेपर वह एक जगह अथवा एक ही समय कई जगह अपनी पूर्ण शक्तिके साथ प्रकट होती है। इस तरह पूर्ण शक्तिसम्पन्न होकर एक जगह या एक ही समय अनेक जगह एकदेशीय साकाररूपमें प्रकट होनेके साथ ही वह

अग्नि अव्यक्त निराकाररूपमें सर्वत्र व्याप्त भी रहती है। इसी प्रकार निराकार सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन अक्रियरूप परमात्मा अप्रकटरूपसे सब जगह व्याप्त होते हुए भी सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न अपने पूर्ण प्रभावके सहित एक जगह अथवा एक ही कालमें अनेक जगह प्रकट हो सकते हैं।

५४-भगवान्‌के अवतरणमें कई कारणोंमेंसे एक यह भी कारण समझमें आता है कि वे संसारके जीवोंपर दया करके सगुणरूपमें प्रकट होकर एक ऐसा ऊँचा आदर्श रख जाते हैं, संसारको ऐसा सुलभ और सुखकर मुक्तिमार्ग बतला जाते हैं जिससे वर्तमान एवं भावी संसारके असंख्य जीव परमेश्वरके उपदेश और आचरणको लक्ष्यमें रखकर उनका अनुकरण कर कृतार्थ होते रहते हैं।

५५-भगवान्‌के जन्म और विग्रह दिव्य होते हैं, यह बड़े ही रहस्यका विषय है। भगवान्‌का प्रकट होना और पुनः अन्तर्धान होना उनकी स्वतन्त्र लीला है, वह हमलोगोंके उत्पत्ति-विनाशकी तरह नहीं है।

५६-भगवान् अपने प्रेमी भक्तोंकी इच्छाके अनुसार उन्हें दर्शन देकर अन्तर्धान हो जाते हैं।

५७-भगवान्‌का प्राकट्य भूतप्राणियोंकी उत्पत्तिकी अपेक्षा ही नहीं, किन्तु योगियोंके प्रकट होनेकी अपेक्षा भी अत्यन्त विलक्षण है।

५८-भगवान् मूल प्रकृतिको अपने अधीन किये हुए ही अपनी योगमायासे प्रकट होते हैं।

५९-ईश्वरका प्रकट होना उनकी लीला है।

६०-ईश्वर प्रकट होनेमें सर्वथा स्वतन्त्र हैं।

६१-ईश्वरके अवतारमें हेतु हैं जीवोंपर उनकी अहैतुकी दया।

६२-ईश्वरका शरीर परम दिव्य एवं अप्राकृत होता है, वह पाञ्चभौतिक नहीं होता।

६३-(अवतारमें) सम्पूर्ण अनन्त आनन्द ही मूर्तिमान् होकर प्रकट हो जाता है, साक्षात् प्रेम ही दिव्य मूर्ति धारणकर प्रकट हो जाता है।

६४-जो उस आनन्द और प्रेमार्णव श्यामसुन्दर दिव्य शरीरका तत्त्व जान लेता है, वह प्रेममें मुग्ध हो जाता है, आनन्दमय बन जाता है।

६५-नेत्र रूपको देख सकता है, अतएव भगवान्‌को रूपवाला बनना पड़ता है, त्वचा स्पर्शको विषय करती है, अतएव भगवान्‌को स्पर्शवाला बनना पड़ता है, नासिका गन्धको विषय करती है, अतएव भगवान्‌को दिव्य गन्धमय वपु धारण करना पड़ता है।

६६-साक्षात् परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको परमात्मा न मानकर एक मनुष्य-विशेष मानना किसी चक्रवर्ती विश्वसम्राट्‌को एक साधारण ताल्लुकेदार मानकर उसका अपमान करनेकी भाँति ईश्वरकी अवज्ञा या उनका अपमान करना है।

६७-शुद्ध सच्चिदानन्द निराकार परमात्माके दिव्यगुणोंके सहित प्रकट होनेके तत्त्वको जो जानता है, वही पुरुष उस परमात्माकी दयासे परमगतिको प्राप्त होता है।

६८-भगवान्‌के कर्मोंकी दिव्यता जाननेसे पुरुष परमपदको प्राप्त हो जाता है।

६९-भगवान्‌की प्रत्येक क्रियामें प्रेम एवं दक्षता, निष्कामता और दया परिपूर्ण है।

७०-भगवान्‌के लिये कोई कर्तव्य न होनेपर भी वे केवल जीवोंको सन्मार्गपर लगानेके लिये ही कर्म किया करते हैं। हम तो चीज ही क्या हैं, भगवान्‌की लीलाओंको देखकर ऋषि, मुनि और देवतागण भी मोहित हो जाया करते थे।

७१-ईश्वरके लिये कोई बात भी असम्भव नहीं है। वे असम्भवको भी सम्भव करके दिखा सकते हैं।

७२-परमात्माके जन्म और कर्मकी दिव्यताका विषय बड़ा अलौकिक और रहस्यमय है।

७३-भगवान्‌के जन्म और कर्मकी दिव्यताको जो तत्त्वसे जानता है, वही भगवान्‌को तत्त्वसे जानता है।

७४-सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्दघन परमात्मा अजन्मा, अविनाशी, सर्वभूतोंके परमगति और परम आश्रय हैं, वे केवल धर्मकी स्थापना और संसारका उद्धार करनेके लिये ही अपनी योगमायासे सगुणरूप होकर प्रकट होते हैं।

७५-भगवान्‌के समान सुहृद्, प्रेमी और पतितपावन दूसरा कोई नहीं है।

७६-भगवान्‌के विग्रहका रहस्य भगवद्रूपमें स्थित परम भक्त महात्मा लोग ही भगवत्कृपासे जान सकते हैं।

७७-सूर्यका प्रकाश सब जगह समान होनेपर भी काठ और काँचमें प्रत्यक्ष भेद प्रतीत होता है। काँचोंमें भी सूर्यमुखी काँचमें तो इतनी विशेषता है कि उससे रूई और कपड़े भी जल जाते हैं। सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी संसारके पदार्थोंकी अपेक्षा हृदयमें भगवान्‌का निवास विशेषरूपसे माना गया है। ज्ञानी या भक्तके हृदयमें उससे भी अधिक विशेषता है। अवतारविग्रहमें तो उन सबसे अधिक विशेषता है। वह तो उनका स्वरूप ही है, इससे उसके कार्य भी सब भगवद्रूप ही हैं।

७८-भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रेम और आनन्दकी मूर्ति ही हैं।

७९-भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार प्रेम और धर्मके संस्थापन तथा प्रचारके लिये ही हुआ।

८०-भगवान् श्रीकृष्णने विशुद्ध प्रेमका जो विशाल प्रवाह बहा दिया उसे एक बार समझ लेनेपर ऐसा कौन है जिसका हृदय द्रवित और आनन्दसे पुलकित न हो जाय।

८१-भगवान्‌की प्रेममयी लीला और उनके प्रेमके तत्त्वका ज्ञान उनके अनुग्रहसे ही हो सकता है।

८२-भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं, उनमें तो विषय-विकारकी आशंका ही नहीं की जा सकती।

८३-जब भगवान् मनुष्य-शरीरमें अवतीर्ण होते हैं तब मनुष्यके अनुसार चेष्टा करते हैं।

८४-भगवान्‌के मनुष्योचित कर्मोंको देखकर मुनिगणोंको भी भ्रम हो जाता है, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है?

८५-भगवान् दया करके जिसको अपना परिचय देते हैं, वे ही उन्हें पहचान सकते हैं।

८६-जहाँ सत्य है, जहाँ धर्म है, जहाँ लज्जा है, जहाँ सरलता है वहीं कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण हैं वहीं जय है।

८७-भगवान्‌की कोई भी क्रिया या उनका एक भी संकल्प कभी निष्फल नहीं होता।

८८-संसारमें क्षमा, दया, शान्ति आदि जितने गुण दीखते हैं; तेज, ऐश्वर्य आदि जितनी विभूतियाँ प्रतीत होती हैं, शक्ति और प्रताप आदि जितने उच्चभाव हैं, उन सबको भगवान् श्रीकृष्णके तेजके किसी एक अंशका ही विस्तार समझना चाहिये।

८९-ईश्वर दयालु है, साथ ही न्यायकारी है, उसमें ये दोनों ही गुण एक ही समय एक ही साथ पूर्णरूपसे रहते हैं।

९०-ईश्वरका दण्ड भी वरदानके सदृश होता है।

९१-ईश्वर अपने सेवकके अपराधोंका विचार न कर अपने विरद—अपने दयापूर्ण स्वभावकी ओर ही देखते हैं।

९२-जीवोंको बचानेके लिये ईश्वर न्यायानुकूल सहायता भी देता है, पद-पदमें सावधान करता रहता है, अज्ञताके कारण जीव न समझे तो इसमें उस ईश्वरका क्या दोष? यदि सूर्यके प्रकाशमें नेत्रोंके दोषके कारण उल्लूको अन्धकार मालूम हो तो सूर्यका क्या दोष?

९३-परमेश्वर बिना पूछे मार्ग बतानेवाला एवं हेतुरहित प्रेम करनेवाला है।

९४-वह दयालु परमेश्वर इन दुःखी जीवोंको पूर्णतया सहायता करनेके लिये सब प्रकारसे तैयार है। पर पापी जीव अश्रद्धा और अज्ञानके कारण उस परमेश्वरसे लाभ नहीं उठाते।

९५-ईश्वरके विषयमें जो जितना जानता है वह उतना ही लाभ उठा सकता है।

९६-जिस प्रकार अज्ञानी पुरुषको गङ्गाके किनारे रहते हुए भी बिना ज्ञानके उससे लाभ नहीं होता, दरिद्र मनुष्यको घरमें पारस रहते हुए भी उसको पत्थर समझनेके कारण लाभ नहीं मिलता। इसी प्रकार ईश्वरका तत्त्व न जाननेके कारण अज्ञानी उससे लाभ नहीं उठा सकता।

९७-ईश्वरको यथार्थरूपसे जान लेनेपर ईश्वर प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारा लग सकता है।

९८-जिस क्षण मनुष्य ईश्वरको परम हितैषी, प्राणोंसे बढ़कर प्यारा समझ ले, उसी क्षण उसके मनोविकार राग-द्वेषादि डाकू समूल नाश हो जायँ।

९९-परमात्मा नित्य होनेके कारण तद्विषयक ज्ञान भी नित्य है।

१००-यद्यपि ईश्वर सबका प्रेमी, सुहृद् और रक्षक है पर जो ईश्वरको प्रेमी और मित्र समझता है, परमेश्वर उसीकी सब प्रकार रक्षा करता है।

१०१-ईश्वर न्यायप्रिय है एवं न्यायपरायणताको रखते हुए ही दयालु है।

१०२-वास्तवमें जो वस्तुतत्त्व है, उसको न भेद ही कहा जा सकता है और न अभेद ही। वह सबसे विलक्षण है, मन-वाणीसे परे है।

१०३-वास्तविक तत्त्वको जो जानते हैं, वे ही जानते हैं। जाननेवाले भी उसका वाणीसे वर्णन नहीं कर सकते।

१०४-वास्तविक स्वरूप अनिर्वचनीय है।

१०५-परमात्माकी कृपासे ही परमात्मा जाननेमें आ सकता है।

१०६-परमात्मतत्त्वको यथार्थरूपसे जाननेका सरल उपाय परमात्माकी शरणागति है।

१०७-अनिर्वचनीय, अलक्ष्य, अचिन्त्य और गुणातीत अनन्त ब्रह्मके किसी एक अंशमें सत्त्व-रज-तम त्रिगुणमयी प्रकृति (अव्याकृत माया) स्थित है। उसी ब्रह्मके अंशको सगुण ब्रह्म कहा जाता है। इस मायाविशिष्ट ब्रह्मको ही सगुण-निराकार ब्रह्म समझना चाहिये।

१०८-गुणातीतकी उपासना नहीं बन सकती। क्योंकि गुणोंसे अतीत वस्तु किसीका विषय नहीं हो सकती।

१०९-वह विज्ञानानन्दघन सर्वव्यापी निराकार ब्रह्म ही अपनी इच्छासे तेजोमय प्रकाशस्वरूपमें आता है। उसको ज्योतिर्मय भी कहते हैं।

११०-वही ज्योतिर्मय ब्रह्म चतुर्भुजरूपसे महाविष्णुके आकारमें दिव्य विग्रह धारण करता है। उसी चतुर्भुज महाविष्णुको सगुण-साकार ब्रह्म कहते हैं।

१११-वही महाविष्णु ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूपसे उत्पत्ति, पालन और संहारका कार्य करता है।

११२-जैसे जलके परमाणु, बादल, जल, और बर्फ तत्त्वसे विचार करने-

पर एक जल ही है। इन सबको लेकर ही जलका एक समग्र रूप है। इसी प्रकार गुणातीत सगुण-निराकार ज्योतिर्मय और सगुण-साकार सब मिलकर ही एक समग्र ब्रह्म है।

११३-भगवान्‌की शरण लेकर किसी भी रूपकी उपासना करनेवाले श्रद्धालु पुरुष उस समग्र ब्रह्मको जानकर उसे प्राप्त हो जाते हैं।

११४-ईश्वरका रहस्य अद्भुत और अलौकिक है। वह ईश्वर-कृपासे ही यत्किञ्चित् जाना जा सकता है।

११५-"रहस्य" छिपे हुए तत्त्वको कहते हैं। रहस्य (मर्म) हर किसीको नहीं बतलाया जाता। भगवान् भी अपने अधिकारी प्रिय भक्तको ही अपना रहस्य बतलाते हैं।

११६-अपनी वास्तविक स्थिति अपने प्रिय प्रेमीको बतला देना ही असली रहस्यको खोल देना है।

११७-जो मनुष्य गुरु, शास्त्र, संत या सत्संग आदि किसी भी साधनसे ईश्वरके रहस्यको यानी छिपे हुए परम तत्त्वको समझ जाता है, वह फिर एक क्षणके लिये भी ईश्वरको नहीं भूल सकता। वह नित्य-निरन्तर ईश्वरको ही भजता है।

११८-ईश्वरके तत्त्व-रहस्यको जाननेवाला पुरुष यह समझ जाता है कि ईश्वरसे बढ़कर और कोई भी वस्तु नहीं है। इसलिये वह सबसे मुँह मोड़कर केवल ईश्वरको भजनेमें ही लग जाता है।

११९-सारा विश्व परमेश्वरका ही स्वरूप है। यदि हम प्रत्येक रूपमें भगवान्‌को पहचान लें, भगवान्‌का यह रहस्य हमारे लिये खुल जाये तो फिर कोई भी भय या व्याकुलता नहीं रह सकती।

१२०-जैसे बहुरूपिया अपना भेद खोल देता है, वैसे ही भगवान् भी जब दया करके अपना रहस्य खोल देते हैं तब भक्त उसी क्षण निर्भय और सुखमय बन जाता है। क्योंकि वह फिर सर्वत्र, सब समय, केवल एक आनन्दरूप भगवान्‌को ही देखता है।

१२१-सामर्थ्य, शक्तिविशेष या तेजको प्रभाव कहते हैं। ईश्वरका प्रभाव

अपरिमेय है।

१२२-ईश्वर असम्भवको सम्भव कर सकते हैं। समस्त संसारका उद्धार होना असम्भव-सा है, परन्तु ईश्वर चाहें तो एक ही क्षणमें कर सकते हैं।

१२३-ईश्वर अपरिमित प्रभावशाली और सर्वशक्तिमान् हैं, उनके पूर्ण प्रभावको देव, दानव और महर्षिगण भी नहीं जानते। वे स्वयं ही अपने-आपको जानते हैं।

१२४-सारी शक्तियाँ उन्हीं ईश्वरकी शक्तिका एक अंश हैं।

१२५-भगवान्‌का वास्तविक प्रभाव भगवान्‌की शरण लेनेपर भगवान्‌की कृपासे ही जाना जा सकता है।

१२६-परमेश्वर गुणातीत हैं और सर्व सद्गुणोंसे पूर्ण हैं। उनके गुण अनन्त हैं, असीम हैं, शेष-शारदा आदि भी उनके गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं।

१२७-उनके गुणोंका वाणीसे वर्णन करना वैसा ही है जैसे अनन्त धनराशिके स्वामीको लखपति कहना अथवा सूर्यके साथ जुगनूके समुदायकी उपमा देना।

१२८-भगवान् परम प्रेममय हैं। सारे संसारका प्रेम एक जगह इकट्ठा किया जाय तो वह भी प्रेममय प्रभुके प्रेमसागरकी एक बूँदके समान भी शायद ही हो।

१२९-भगवान्‌का प्रकाश अलौकिक है। करोड़ों सूर्योंके इकट्ठे होनेपर भी शायद ही उनके प्रकाशके सदृश प्रकाश हो।

१३०-भगवान्‌की उदारताका तो कहना ही क्या है! विष देनेवाली पूतनाको भी जिन्होंने परमगति दी, उनकी उदारताका अन्दाजा कैसे लगाया जाय?

१३१-अभय तो भगवान्‌का स्वरूप ही है। जिस प्रभुके रहस्य और प्रभावको जान लेनेमात्रसे अथवा जिसके नाम-स्मरणसे ही मनुष्य सदाके लिये अभय हो जाता है, उस अभयरूप भगवान्‌के अभय-गुणको कैसे समझाया जाय?

१३२-दयाके तो भगवान् सागर ही हैं। पापी-से-पापी जीव भी यदि उनकी शरण चला जाता है तो उसे सदाके लिये पापमुक्त कर अपना अभय पद दे देते हैं।

१३३-जिसको कोई नहीं अपनाता, उसे भी शरणागत होनेपर प्रभु अपना लेते हैं।

१३४-सर्वज्ञ परमात्माके ज्ञानकी तो बात ही विलक्षण है। वह ज्ञानरूप ही है। सारे संसारके जीवोंका ज्ञान एकत्र करनेपर भी उसे परमात्माके ज्ञानके एक क्षुद्र परमाणुका आभास बतलाना भी अत्युक्ति न होगा।

१३५-भगवान्‌की पवित्रताका अनुमान कौन करे? जिसके नाम-जप, गुण-गान और स्वरूप-चिन्तनसे महापापी मनुष्य भी परम पवित्र बन जाता है।

१३६-भगवान् महान् ब्रह्मचारी हैं। कामदेव तो उनके चिन्तन करनेवाले भक्तोंके पास भी नहीं आ सकता। जिनके ध्यान और चिन्तनसे ही मनुष्य ब्रह्मचारी बन जाता है, उन महान् ब्रह्मचारीके ब्रह्मचर्यकी महिमा कौन गा सकता है।

१३७-भगवान् क्षमाकी तो मूर्ति ही हैं। बिना ही कारण भृगुजीके वक्षः-स्थलपर लात मारनेपर, उसकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया बल्कि उस लातके चिह्नको सदाके लिये भूषणरूपसे धारण कर लिया। भरी सभामें गाली देनेवाले शिशुपालके सैकड़ों अपराधोंको क्षमा करके उसे मुक्ति दे दी।

१३८-अद्वेष्टा तो भगवान्‌का स्वभाव ही है। द्वेषकी उनमें गन्ध ही नहीं है। भगवान् द्वेष करनेवालोंको भी दण्ड देकर उद्धार करते हैं।

१४९-सत्य भगवान्‌का स्वरूप ही है। समस्त संसारमें जो सत्ता प्रतीत होती है, उसके वही अधिष्ठान हैं। समस्त संसार उन सत्यस्वरूप परमात्माके सत्यके आधारपर ही स्थित है।

१४०-भगवान् परम वैराग्यवान् हैं। गुणमय समस्त संसारको धारण करके भी आप गुणोंसे सर्वथा अतीत हैं। सारा संसार जिनका कुटुम्ब है ऐसे सबका भरण-पोषण करनेवाले बहु-कुटुम्बी होनेपर भी आप किसीमें आसक्त नहीं हैं। सदा सबसे निर्लेप रहते हैं।

१४१-शान्ति और आनन्द तो भगवान्‌का स्वरूप ही है। जिसकी शरण होनेसे मनुष्य परम शान्ति और परम आनन्दको प्राप्त हो जाता है, उसके शान्ति और आनन्दकी उपमा किसके साथ दी जाय?

१४२-प्रभु सारे सात्त्विक गुणोंके समुद्र हैं। उनमें क्षमा, दया, शान्ति, समता, सरलता, उदारता, पवित्रता अपरिमित हैं। वे ज्ञान, वैराग्य, तेज और ऐश्वर्यसे पूर्ण हैं।

१४३-सारे संसारका तेज और ज्ञान इकट्ठा किया जाय तो भी उस तेजोमय ज्ञानस्वरूप परमात्माके तेजके एक अंशके बराबर भी नहीं हो सकता।

१४४-ईश्वर अपनी शक्तिसे ही प्रकट होते हैं और अपनी शक्तिसे ही अन्तर्हित हो जाते हैं अर्थात् छिप जाते हैं। यही उनकी लीला है और वह अत्यन्त रहस्यमयी है। यही भगवान्‌की ज्ञानमयी विशुद्ध दिव्य माया है और वह अलौकिक है, इसलिये भगवान्‌की लीलासे आविर्भूत हुए साकार विग्रहको नकली नहीं मानना चाहिये।

१४५-भगवान्‌के भिन्न-भिन्न साकार विग्रहोंकी महत्ता सिद्ध करनेके लिये ही भिन्न-भिन्न पुराणोंकी सृष्टि हुई है।

१४६-भगवान्‌के सभी विग्रह महत्त्ववाले हैं और भिन्न-भिन्न होते हुए भी वस्तुतः एक ही हैं।

१४७-शिवपुराणके शिव, विष्णुपुराणके विष्णु और ब्रह्मवैवर्त तथा भागवतपुराणके कृष्ण एक ही हैं अर्थात् शुद्ध विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही हैं। वही ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें प्रकट होकर संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारका कार्य करते हैं। यह सब उनकी लीला है।

१४८-ईश्वरकी लीलाओंका रहस्य प्रत्येक साधारण बुद्धिवाले मनुष्यके लिये दुर्विज्ञेय है।

१४९-सारे संसारका सौन्दर्य प्रभुके एक रोमके समान भी नहीं है। वे आनन्दमूर्ति हैं।

१५०-जैसे तारके द्वारा बिजली अनेक प्रकारसे कार्य कर रही है। वैसे ही प्रभुकी शक्ति सब कुछ कर रही है।

१५१-प्रभुका रहस्य कौन जान सकता है? वे सबमें समाये हैं परन्तु कोई उन्हें नहीं पकड़ पाता। मर्मका नाम ही रहस्य है।

१५२-परमात्माके रहस्यको जाननेवाला सर्वदा, सर्वत्र निर्भय हो जाता है।

१५३-जीवमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह प्रभुके रहस्यको जान सके। जब प्रभु जनाते हैं तभी जान सकता है।

१५४-ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वगुणसम्पन्न, निर्विकार, अनन्त, नित्य, विज्ञान, आनन्दघन है।

१५५-वह चिन्मय परमात्मा सगुण भी है और निर्गुण भी। यह त्रिगुणमय सम्पूर्ण संसार उस परमात्माके किसी एक अंशमें है, जिस अंशमें यह संसार है उस अंशका नाम सगुण है और संसारसे रहित अनन्त असीम जो नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्माका स्वरूप है उसका नाम निर्गुण है। सगुण और निर्गुण समग्रको ही ईश्वर कहा गया है।

१५६-सगुण ईश्वर साकार भी है और निराकार भी। जैसे निराकाररूपसे व्यापक अग्नि संघर्षण आदि साधनोंद्वारा साधकके सम्मुख प्रकट हो जाता है वैसे ही वह सर्वान्तर्यामी दयालु परमात्मा निराकाररूपसे चराचर, सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंमें व्यापक रहता हुआ ही धर्मके स्थापन और जीवोंके उद्धारके लिये भक्तोंकी भावनाके अनुसार श्रद्धा, भक्ति, प्रेम आदि साधनोंद्वारा साकाररूपसे समय-समयपर प्रकट होता है।

१५७-जहाँ साकाररूपसे भगवान् प्रकट हुए हों वहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि वे इतने ही हैं, निर्गुण और सगुणरूपमें सब जगह स्थित रहता हुआ ही अर्थात् सम्पूर्ण शक्तिसम्पन्न समग्र ब्रह्म ही सगुण-साकार-स्वरूपमें प्रकट होता है।

१५८-वह सगुण परमात्मा सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाशकालमें सदा ही ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूपसे विराजमान है। सर्वशक्तिमान्, सबके सुहृद् एवं बिना कारण दया करनेवाले भगवान्‌की तो यह नीति है कि जो भी कोई उनसे मिलना चाहे वे उससे मिलते हैं। वे कहते हैं—**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**''।

ईश्वर

१-ईश्वर स्वतः प्रमाण है। इसके लिये अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता ही नहीं है। सम्पूर्ण प्रमाणोंकी सिद्धि भी ईश्वरकी सत्ता-स्फूर्तिसे होती है।

२-ईश्वर है या नहीं—यह प्रश्न भी ईश्वरको सिद्ध करता है, क्योंकि मिथ्या वस्तुके विषयमें तो प्रश्न ही नहीं बनता, जैसे ''वन्ध्यापुत्र है या नहीं''—यह प्रश्न नहीं बनता।

३-आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि पदार्थोंकी उत्पत्ति और नाना प्रकारकी योनियोंके यन्त्रोंकी भिन्न-भिन्न अद्भुत रचना और नियमित संचालन-क्रियाको देखनेसे यह सिद्ध होता है कि बिना कर्ताके उत्पत्ति और बिना संचालकके नियमित संचालन होना असम्भव है। जो उनकी उत्पत्ति और संचालन करनेवाला है, वही ईश्वर है।

४-जीवोंके सुख, दुःख, जाति, आयु, स्वभावकी भिन्नताका गुण-कर्मानुसार यथायोग्य विभाग करना ज्ञानस्वरूप ईश्वरके बिना जड प्रकृतिसे होना सम्भव नहीं है; क्योंकि सृष्टिके प्रत्येक कार्यमें सर्वत्र प्रयोजन देखा जाता है। ऐसी प्रयोजनवती सृष्टिकी रचना एवं विभाग किसी परम चेतन कर्ताके बिना होना सम्भव नहीं है।

५-ईश्वर शेखचिल्लीके घरकी कल्पनाकी भाँति मनमोदक नहीं है।

६-परमात्मा कल्पित नहीं, ध्रुव सत्य है।

७-जिस दयामयी शक्तिका सभी चराचर जीव आसरा लेकर दुःख मिटानेके लिये करुणाभावसे आर्तनाद करते हैं और जिस दयामयी शक्तिसे दुःखियोंका दुःख मिटता है, उस शक्तिशालीको हम परमात्मा मानते हैं।

८-इस सम्पूर्ण संसारका जो आधार और मूल कारण है, वह परमात्मा है।

९-ईश्वर बिना ही कारण सबपर दया करता है, प्रत्युपकारके बिना कृपा करता है और सबको समान समझकर सबसे प्रेम करता है। इसलिये उसको मानना कर्तव्य है और कर्तव्यपालन करना ही मनुष्यका मनुष्यत्व है।

१०-ईश्वरको माननेसे उसकी प्राप्तिके लिये उसके गुण, प्रेम, प्रभावको जाननेकी खोज होती है और उसके नामका जप, स्वरूपका ध्यान, गुणोंके

श्रवण-मननकी चेष्टा होती है, जिससे मनुष्यके पापों, अवगुणों एवं दु:खोंका नाश होकर उसे परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

११-अच्छी प्रकारसे समझकर ईश्वरको माननेसे मनुष्यके द्वारा किसी प्रकारका दुराचार नहीं हो सकता। जिन पुरुषोंमें दुराचार देखनेमें आते हैं, वे वास्तवमें ईश्वरको मानते ही नहीं हैं, व्यर्थ ही ईश्वरवादी बने हुए हैं।

१२-सच्चे हृदयसे ईश्वरको माननेवालोंकी सदासे जय होती आयी है। ध्रुव, प्रह्लाद-जैसे अनेकों ज्वलन्त उदाहरण शास्त्रोंमें भरे हैं। वर्तमानमें भी सच्चे हृदयसे ईश्वरको मानकर उसकी शरण लेनेवालोंकी प्रत्यक्ष उन्नति देखी जाती है। सम्पूर्ण श्रुति, स्मृति आदि शास्त्रोंकी सार्थकता भी ईश्वरको माननेसे ही सिद्ध होती है। क्योंकि सम्पूर्ण शास्त्रोंका ध्येय ईश्वरके प्रतिपादनमें ही है।

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र गीयते॥

(महा० स्वर्ग० अ० ६)

१३-ईश्वरको न माननेसे मनुष्यकी आध्यात्मिक स्थिति नष्ट हो जाती है और उसमें पशुपन आ जाता है। संसारमें जो लोग ईश्वरको नहीं माननेवाले हैं, गौर करके देखनेसे उनमें यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आती है।

१४-जो परमात्मा स्वतः प्रमाण है और जिस परमात्मासे ही सब प्रमाणोंकी सिद्धि होती है उसके विषयमें प्रमाण पूछना वैसा ही है, जैसा किसी मनुष्यका अपने ही सम्बन्धमें शंका करना कि मैं हूँ या नहीं।

१५-जो सूक्ष्मदर्शी हैं वे ही सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा परमात्माका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते हैं।

१६-जिनको स्वयं साक्षात् करनेकी इच्छा हो वे श्रुति, स्मृति तथा महात्मा पुरुषोंके बताये हुए मार्गके अनुसार साधनके लिये प्रयत्न करनेसे परमात्माको प्रत्यक्ष कर सकते हैं।

१७-अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश (मरणभय)—इन पाँच क्लेशोंसे, पाप-पुण्य आदि कर्मोंसे, सुख-दु:खादि भोगोंसे और सम्पूर्ण वासनाओंसे रहित पुरुष-विशेष (पुरुषोत्तम) ईश्वर है।

१८-कुरानमें लिखा है—पूर्व और पश्चिम सब तरफ खुदा ही हैं, तुम जिधर भी अपना मुँह घुमाओगे, उधर ही खुदाका मुख रहेगा। खुदा वास्तवमें अत्यन्त ही उदार है। सर्वशक्तिमान् है।

१९-ईसाने कहा है—जिसका ईश्वरमें विश्वास है तथा जो भगवान्‌की शक्तिके आश्रित है, वह संसारसे तर जायगा, पर अविश्वासियोंकी बड़ी दुर्गति होगी।

२०-मनुष्य यदि विचार-दृष्टिसे देखे तो उसे न्यायकारी और परम दयालु ईश्वरकी सत्ता और दयाका पद-पदपर परिचय मिलता है।

२१-सर्वशक्तिमान् विज्ञानानन्दघन परमात्माकी सत्ता और दयापर तथा उससे होनेवाली महात्माओंकी जीवन-घटनाओंपर विश्वास करनेसे अवश्य लाभ होता है।

२२-भगवान् हैं अवश्य, उनके होनेमें रत्तीभर भी शंका नहीं है यह दृढ़ निश्चय है।

२३-ईश्वरकी सत्ता मान लेनेसे ही पापका नाश हो जाता है।

प्रार्थना

१-आपके रहते यदि मेरी दुर्गति भी हो जाय तो कोई आपत्ति नहीं। आपका चिन्तन होते रहना चाहिये। फिर चाहे जितने शारीरिक क्लेश क्यों न हों! आपके चिन्तनको छोड़कर मैं कोई सुख नहीं चाहता। मुझे आपका चिन्तन प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय कब लगेगा? प्रभो! जिन लोगोंको आपका चिन्तन प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है वे ही धन्य हैं! जो ऐसे नहीं हैं उनका तो मनुष्यदेहधारण सर्वथा व्यर्थ ही है।

२-ईश्वरसे प्रार्थना करनेसे भगवान् स्वयं ही सद्गुरुकी प्राप्ति करा सकते हैं। यही विश्वास करके प्रार्थना करते रहना चाहिये।

३-प्रभुसे क्या माँगना चाहिये? प्रभुका प्रेमसहित अनन्य चिन्तन।

४-भगवान्‌से माँगना ही चाहें तो उनके दर्शन माँगने चाहिये अथवा

ऐसी वस्तु माँगनी चाहिये कि जिसके मिल जानेपर फिर कभी कुछ भी माँगना न पड़े।

५-शरीर, स्त्री, पुत्र और रुपयोंके लिये इतने बड़े मालिकसे अर्ज नहीं करनी चाहिये।

६-महात्मालोग कहते हैं "मर भले ही जायँ पर अपने लिये भगवान्‌से कभी कुछ भी माँगें नहीं!"

७-भगवान्‌से इस तुच्छ शरीरके लिये प्रार्थना नहीं करनी चाहिये।

८-बड़े रहस्यकी बात—(क) स्वर्गाश्रमके गङ्गातटपरके वटवृक्षके दृश्यको याद करे और परमात्मासे प्रार्थना करे कि हे प्रभो! हे दीनबन्धो! आपकी प्रेम-भक्तिमें ऐसा समय बीतनेका समय फिर कब आयेगा।

(ख) जो बातें यहाँ हुई हैं उनको बार-बार याद करे। परमात्माके प्रेम-प्रभावके विषयकी चर्चाको बार-बार याद करे, मनन करे और एकान्तमें बैठकर विचार कर-करके अपना कर्तव्य निश्चित करे और तदनुकूल आचरण करे।

९-भगवान् सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी होनेसे सबके हृदयमें सदा प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। मनुष्य यदि स्वार्थ छोड़कर सरल जिज्ञासुभावसे हृदयस्थित ईश्वरसे पूछे तो उसे साधारण तथा यथार्थ उत्तर मिल जाता है।

१०-एकान्तमें बैठकर करुणभाव और गद्गद वाणीसे भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि "हे परमेश्वर! मैं हृदयसे आपकी स्मृति चाहता हूँ। आपसे आपकी स्मृति बनी रहनेकी भीख माँगता हूँ।" इस प्रकार नित्य अपने भावोंके अनुसार भगवान्‌से कातर प्रार्थना करे। एक मिनटकी सच्ची प्रार्थनासे भी बड़ा लाभ होता है।

११-परमात्मा छोटे-बड़ेका कोई खयाल नहीं करते। एक छोटे-से-छोटा व्यक्ति परमात्माको जिस भावसे भजता है, उनके साथ जैसा बर्ताव करता है, वे भी उसको वैसे ही भजते और वैसा ही बर्ताव करते हैं। यदि कोई उनके लिये रोकर व्याकुल होता है तो वे भी उससे मिलनेके लिये उसी प्रकार अकुला उठते हैं। यह उनकी कितनी दयाकी बात है?

१२-जब साधक अपने पुरुषार्थसे निराश हो जाता है तब निरुपाय होकर

भगवान्‌के शरण जाता है और आर्त होकर पुकार उठता है—"नाथ! मुझे इस घोर संकटसे बचाइये। मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। मैं जो अपने बलसे अपना उद्धार मानता था, वह मेरी भारी भूल थी। राग-द्वेष और काम-क्रोधादि शत्रुओंके दबानेसे अब मुझे इस बातका पूरा पता लग गया कि आपकी कृपाके बिना मेरे लिये इनसे छुटकारा पाना कठिन ही नहीं, वरं असम्भव-सा है।" जब अहंकारको छोड़कर इस तरह सरलभावसे और सच्चे हृदयसे मनुष्य भगवान्‌के शरण हो जाता है तब भगवान् उसे अपना लेते हैं और आश्वासन देते हैं, क्योंकि भगवान्‌की यह घोषणा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

(वा० रा० ६। १८। ३३)

१३-दयासिन्धु भगवान्‌की शरण होकर उनके गुण, प्रभाव और रहस्यको तत्त्वसे जानने एवं उन्हें प्राप्त करनेके लिये उनसे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

"हे नाथ! आप दयासागर, सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हैं, आपकी किञ्चित् दयासे ही सम्पूर्ण संसारका एक क्षणमें उद्धार हो सकता है, फिर हम-जैसे तुच्छ जीवोंकी तो बात ही क्या है? इसलिये हम आपको साष्टांग प्रणाम करके सविनय प्रार्थना करते हैं कि हे दयासिन्धो! हमपर दयाकी दृष्टि कीजिये जिससे हमलोग आपको यथार्थरूपसे जान सकें। यद्यपि आपकी सबपर अपार दया है किन्तु उसका रहस्य न जाननेके कारण हम सब उस दयासे वञ्चित हो रहे हैं, अतएव ऐसी कृपा कीजिये जिससे हमलोग आपकी दयाके रहस्यको समझ सकें। यदि आप केवल दयासागर ही होते और अन्तर्यामी न होते तो हमारी आन्तरिक पीड़ाको नहीं पहचानते, किन्तु आप तो सबके हृदयमें विराजमान सर्वान्तर्यामी भी हैं, इसलिये आपके वियोगमें हमारी जो दुर्दशा हो रही है उसे भी आप जानते हैं। आप दयासागर और सर्वान्तर्यामी होकर भी यदि सर्वेश्वर और सर्वसामर्थ्यवान् नहीं होते तो हम आपसे अपने कल्याणके लिये प्रार्थना नहीं करते। परन्तु आप तो सर्वलोकमहेश्वर और

सर्वशक्तिमान् हैं, इसलिये हमारे-जैसे तुच्छ जीवोंका इस मृत्युरूप संसार-सागरसे उद्धार करना आपके लिये अत्यन्त साधारण बात है।

१४-"हम तो आपसे यही चाहते हैं कि आपमें ही हमारा अनन्य प्रेम हो, हमारे हृदयमें निरन्तर आपका ही चिन्तन बना रहे और आपसे कभी वियोग न हो। आप ऐसे सुहृद् हैं कि केवल भक्तोंका ही नहीं परन्तु पतित और मूर्खोंका भी उद्धार करते हैं। आपके पतितपावन, पातकीतारण आदि नाम प्रसिद्ध ही हैं, इसलिये ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और सदाचारसे हीन हम-जैसे मूढ़ और पतितोंका उद्धार करना आपका परम कर्तव्य है।"

१५-एकान्तमें बैठकर इस प्रकार सच्चे हृदयसे करुणाभावसे गद्गद होकर उपर्युक्त भावोंके अनुसार किसी भी भाषामें प्रभुसे प्रार्थना करनेपर भगवत्कृपासे गुण, प्रभाव और तत्त्वसहित भगवान्को जानकर मनुष्य परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

१६-जो व्यक्ति आपके दुर्लभ दर्शन पाकर आपसे सांसारिक सुख माँगता है वह भृत्य नहीं, व्यापारी है। हे भगवन्! कामसे बहुत ही अनिष्ट होते हैं, कामना उत्पन्न होनेसे इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धीरज, बुद्धि, लज्जा, सम्पत्ति, तेज, स्मृति एवं सत्यका विनाश होता है। इसलिये हे ईश! हे वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ! आप यदि मुझको मनचाहा वर देते ही हैं तो यही वर दें कि मेरे हृदयमें अभिलाषाओंका अंकुर ही न जमे। मैं आपसे यही वर माँगता हूँ।

१७-"माँ" बच्चोंको भुलानेके लिये उनके सामने नाना प्रकारके खिलौने डाल देती है, कुछ खानेके पदार्थ उनके हाथमें दे देती है, जो बच्चे उन पदार्थोंमें रमकर "माँ" के लिये रोना छोड़ देते हैं, माँ भी उन्हें छोड़कर अपना दूसरा काम करने लगती है। परन्तु जो बच्चा किसी भी भुलावेमें न भूलकर केवल "माँ-माँ" पुकारा करता है। उसे "माँ" अवश्य ही अपनी गोदमें लेनेको बाध्य होती है, ऐसे जिद्दी बच्चेके पास घरके सारे आवश्यक कामोंको छोड़कर भी माँको तुरन्त आना और उसे अपने हृदयसे लगाकर दुलराना पड़ता है; क्योंकि माता इस बातको जानती है कि यह बच्चा मेरे सिवा और किसी विषयमें भी नहीं भूलता है।

१८-भगवान् भी भक्तकी परीक्षाके लिये उसके इच्छानुसार उसे अनेक प्रकारके विषयोंका प्रलोभन देकर भुलाना चाहते हैं, जो उनमें भूल जाता है वह तो इस परीक्षामें अनुत्तीर्ण होता है परन्तु जो भक्त भाग्यवश संसारके समस्त पदार्थोंको तुच्छ, क्षणिक और नाशवान् समझकर उन्हें लात मार देता है और प्रेममें मग्न होकर सच्चे मनसे उस सच्चिदानन्दमयी मातासे मिलनेके लिये लगातार रोया करता है, ऐसे भक्तके लिये सम्पूर्ण कामोंको छोड़कर भगवान्‌को स्वयं तुरन्त ही आना पड़ता है।

१९-मुक्तिकी इच्छाको कलङ्क समझकर और अपनी दुर्बलता तथा नीचाशयताका अनुभव कर भगवान्‌पर अपना अविश्वास जानकर भक्त परमात्माके सामने एकान्तमें रोकर पुकार उठता है कि--

२०-"हे प्रभो! जबतक मेरे हृदयमें मुक्तिकी इच्छा बनी हुई है तबतक मैं आपका दास कहाँ? मैं तो मुक्तिका ही गुलाम हूँ। आपको छोड़कर अन्यकी आशा करता हूँ। मुक्तिके लिये आपकी भक्ति करता हूँ और इतनेपर भी अपनेको निष्काम प्रेमी शरणागत भक्त समझता हूँ। नाथ! यह मेरा दम्भाचरण है। स्वामिन्! दयाकर इस दम्भका नाश कीजिये। मेरे हृदयसे मुक्तिरूपी स्वार्थकी कामनाका भी मूलोच्छेद कर अपने अनन्य प्रेमकी भिक्षा दीजिये। आप-सरीखे अनुपमेय दयामयसे कुछ माँगना अवश्य ही लड़कपन है परन्तु आतुर क्या नहीं करता?"

२१-कभी ऐसा जान पड़े कि हमारे हृदयमें कोई कुविचार प्रवेश करना चाहता है तो हमें कातर स्वरसे "हे नाथ! हे नाथ!" पुकारना चाहिये। प्रभुका आश्रय लेनेसे चिन्ता, भय, शोक एवं सब प्रकारके दुर्गुण-दुराचार मूलसहित नष्ट हो जाते हैं तथा सद्गुण, सदाचार एवं शान्ति आदिका स्वतः ही विकास होता है।

२२-ईश्वरको छोड़कर किसी दूसरेसे कामना न करे।

२३-सर्वोत्तम बात तो यह है कि किसीसे याचना करे ही नहीं।

२४-यदि किसीको भी भगवान्‌से मिलनेकी सच्ची इच्छा हो तो उसे चाहिये कि वह रुक्मिणी, सीता और व्रजबालाओंकी तरह सच्चे प्रेमपूरित

हृदयसे भगवान्‌से मिलनेके लिये विलाप करे।

२५-एक पलको प्रलयके समान बितानेवाली रुक्मिणीके सदृश श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये हार्दिक विलाप करनेसे भगवान् प्रत्यक्ष दर्शन दे सकते हैं।

२६-कुसंस्कारोंके नाशके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये।

२७-परमेश्वरके सम्मुख दीन-भावसे प्रार्थना करनेवाला तो नीच भी परमपदको प्राप्त हो जाता है।

२८-जो सच्चे हृदयसे अपनेको सबसे लघु, दीन समझता है, उसीका प्रभु उद्धार करते हैं।

२९-भगवान्‌के लिये सच्चे दिलसे रोना न आनेमें दो कारण है—श्रद्धाकी कमी और पूर्वसंचित पाप। इसीसे यह बात निश्चयरूपसे मनमें नहीं जँचती कि वे सब जगह सदा-सर्वदा मौजूद हैं और हमारी करुण पुकार तत्काल सुनते और उसपर दयार्द्र हृदयसे ध्यान देते हैं।

३०-प्रभुसे सच्चे हृदयसे ऐसी कातर प्रार्थना करनी चाहिये कि हे नाथ! मैं अति नीच हूँ, किसी प्रकार भी पात्र नहीं हूँ। गोपियोंकी भाँति जिसमें प्रेमका बल है, उसके हाथ तो आप स्वयं ही बिक जाते हैं। हे प्रभो! मेरे पास प्रेमका बल होता तो फिर रोने और प्रार्थना करनेकी क्या जरूरत थी! मैं जब अपने पापों और अवगुणोंकी तथा बलकी ओर देखता हूँ तो मनमें कायरता और निराशा छा जाती है, परन्तु हे नाथ! आपकी दया तो अपार है, आप दयासिन्धु हैं, पतितपावन हैं, मुझे वह बल दीजिये जिससे मैं आपके रहस्यको जान जाऊँ।